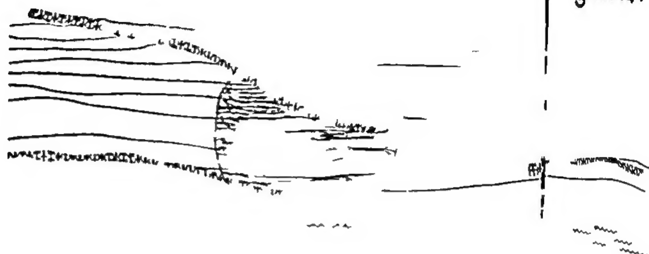



पौ फटने से पहिले

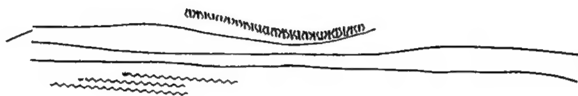
सुमित्रानंदन





राजकमल प्रकाशन

सुमित्रानंदन पंत



पौ फटने से पहिले

[illegible] १९६३

[illegible]
[illegible] प्रकाशन [illegible] लिमिटेड
८ [illegible]
मूल्य ८.०० रु

[illegible]
[illegible]
[illegible]

पीछे [illegible] म [illegible]
[illegible] के [illegible]
रचना [illegible] में [illegible]
[illegible] किया है य
[illegible] मात्र है
[illegible] रहे हैं वे प्रथम [illegible]
[illegible] पर विचरण [illegible]
[illegible] प्रसन्नता है कि
[illegible] सका ।
[illegible] होने [illegible]
[illegible] प्रकाश [illegible]
[illegible] रेखा [illegible]
[illegible] के अध्ययन में
[illegible] रचनाएँ [illegible] जीवन

[illegible] के० जी० [illegible]
[illegible] जुलाई १९६३

विज्ञापन

पौ फटने से पहिले में मेरी सन् १९६७ की कुछ कविताएं संगृहीत हैं जिनमें से अधिकांश अब के ग्रीष्मावकाश में रानीखेत में लिखी गई हैं। इन रागात्मक रचनाओं में मैंने आज के युग की पृष्ठभूमि में प्रेम के संचरण को अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है ये प्रतिक्रियाएं कई वर्षों से मेरे भीतर संचित थीं। अनेक लोगों के लिए जो कल्पना मात्र है वह मेरे लिए सत्य रहा है। जो मेरे अत्यंत घनिष्ठ संपर्क में रहे हैं वे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से जानते हैं कि मेरा मन अधिकतर इसी भाव भूमि पर विचरण करता रहा है।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं अपनी भावनात्मक सर्जनाओं को इन रचनाओं में यत्किंचित् वाणी दे सका हूं। जैसा कि पौ फटने से पहिले नाम से स्पष्ट है इन रचनाओं में आज के ह्रासयुगीन भावनात्मक संघर्ष का गहन अंधकार तथा कल की संवेदना का आनारुण प्रकाश संग्रथित है साथ ही राग चेतना के सामाजिक विकास की सूक्ष्म रूप रेखा भी इनमें अंतर्हित है। मुझे विश्वास है प्रस्तुत काव्य संग्रह मेरी भावदृष्टि के अध्ययन में सहायक हो सकेगा।

ये रचनाएँ मुक्त जीवन की केंद्रीय चेतना को सम्बोधित हैं।

१८ बी० ७ के० जी० मार्ग, इलाहाबाद
१० जुलाई, १९६७

—सुमित्रानंदन पंत

बच्चन को
षष्टि पूर्ति पर
सस्नेह

बचन को
षष्टि पूर्ति पर
सस्नेह







पंक्ति सूची

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	९	प्रिय	प्रिये
५६	४	सवगन	सवगत
६४	२	धाप	धापें
६४	१३	गध	गध से
११७	१९	का	की
११७	२६	सजा	सजो
११८	१४	अतमक्त	अतमुक्त
१७१	१४	य	वे

(एक)

अंधकार का घोर प्रहर यह
नीरवता गहराती रह रह,—
मन में नहीं कहीं भय संशय,
प्राण, अभी पौ फटने वाली!

लोक परीक्षा का दारुण क्षण
दृष्टि ज्योति हत, लक्ष्य भ्रष्ट मन,
बढ़ता ही जाता संघर्षण
निशा और भी घिरती काली!

गरज रहा निस्तल तम सागर
निश्चेतन भू मन का गह्वर,—
शांत सौम्य आस्था का अंतर
नभ में फूटेगी ही लाली!

मौन स्तब्ध, निर्वात दिगंतर
छायाएँ सी चलतीं भू पर,
चीर तीर सी रही क्षितिज उर
अरुण चूड़ की ध्वनि मतवाली!

मद रही ताराए लोचन
स्वप्नो से उपचेतन उ मन
निजन तम में रग रहा कुछ
केंचुल याड रही निशि याली!

रक्त-स्नात, लो, प्राची अवर
धँसता उर मे स्वण पख शर
अँगडाता सोया समीर जग
तण तरुदल देते करताली!

जय प्रकाश गर्भित लगता तम
यह नव युग आगम का उपक्रम,
चर्णिताक्षि नीलम प्याली म
तुमन फिर रस मदिरा ढाली!

(दो)

कौन थ स्वर्णिम क्षितिज
तुम पार जिनक
प्रिय रहती हो जगोचर।
तैर स्मित मरकत प्रसार
हरित जल्धि स
तरल प्राणा क मनोहर,
लँघ
नीलारोह मन क,
शुभ्र ऊपाएँ
जहाँ स उतर नि स्वर
फाल्सइ आलोक के
रचती दिगतर।

खोजता ु म
तुम्हें तदगत
चेतना के
स्फटिक शिखरो पर
विचर कर।

प्राण,
फहराता रुपहली वायु आ
सुनहला अंचल तुम्हारा
धरा रज रोमांच से भर,—
मौन
सुन पड़ती
तपातुर घाटियों में
नृत्य नूपुर ध्वनि—
अमृत के मेघ सी भर!

चेतना ही नहीं
जग की वस्तुएँ भी
भेद कहती—
हृदय भय संशय तिमिर हर!

विश्व क्षर यह
विश्वमयि पर—
विश्व की सर्वस्व तुम
शाश्वत अनश्वर!

तरुणि
मिलनातुर
क्षितिज से झुक रही तुम—
रूप धरती भावना में
ज्योति भास्वर,

प्रीति तन्मय हृदय
रति उन्मेष प्रेरित
सृजन स्वप्न निरत।

जगाता मर्म में संवेदना स्वर
सूक्ष्म रस में द्रवित अंतर!

(तीन)

जब तुम्हें मैं, प्राण, छूता
देह के भीतर कहीं
छूता अगोचर।

राग में लिपटा
उषाएँ उतर नभ से
कल्पना के खोलती
उर में दिगंतर,

भाव वैभव से प्रसन्न
वसंत करता
रंग रुचि मुकुलित
दिगंत विषण्ण पतझर।

स्वर्ग के खुलते
झरोखे निर्निमेष
अशेष दिखता चेतना मुख,

देह रहती रूप,
रूप अनिद्य श्री सुषमा गुणा स
भाव वेष्टित
ज्योति मदिर सा प्रतिष्ठित
बोध का रस मुग्ध कर
देता अमित सुख।

अमृत झरता प्राण मन म,
उर अघाता ही नही
छवि पान भर करता अनश्वर।

रोम रोम प्रहृष करत वहन
रस-अनुभूति से
अँग सिहर उठते
तडित सुख से
मम थरथर।

कौन कहता—
देह हो तुम?
वस्तु गुण ही चेतना ह?
तुम पृथक रज दह से
सत्ता विमुक्त—
मुक्त बताती
गूढ ऋत-सवदना ह।

देह पर पा जय
प्रिये, मैं छू सका हूँ
प्रीति रस मधुच्छन्न
ज्योति सर
तुम्हारा गुह्य अंतर!—

ज्ञान जाए, मान जाए,
उतर आए
देह मन पर
प्राण पर
रस ज्योति निर्झर,—

जननि, रूपांतर
जगत का कर
निरंतर!

(चार)

तुम सोन के सक्ष्म तार सी
कितनी हो नमनीय
सहज कमनीय

तुम्हारे सौम्य मूल्य को
आक नही पाया
हेमागिनि
बवर भ्-नर।

सखि अतश्चेतने,
उपक्षा करता आया
मनुज निरतर
तुम्हें नगण्य
अवस्तु समझ कर।

भान नही उसको
तुम अपनी शील शक्ति स
हिमगिरि को भी उठा
नचा सकती छिगनी पर।

हाय, दप से चूर चूर
अब मानव का मन!
विद्या मद, धन पद
कुल यश मद—
सभी उसे मोहाध किए,
उन्मत्त उठा फन!

भूल गया वह मानवीय गुण,
निष्ठा, आस्था, सहृदयता—
तप त्याग, समर्पण!

नही जानता,
स्नेह दुग्ध ही से होता
जीवो का पोषण—
सत्य प्रेरणा ही से
जीवन का सवर्धन!
सहज भाव तन्मयता ही से
श्री शोभा स्वप्नो का सृजन!

हेम ल्ते हे
विवश कर रहा नर तुमको
तुम चडी रूप करो फिर धारण,—
ध्वस्त करो मिथ्याऽभिमान को
नष्ट करो गोखले नान को,—
अतमुख फिर करो ध्यान को
सचालित कर लोक यान को!

ओ निश्छल शिशु ही सी
हृदय-बोध-सी
चिन्मयि
आत्म नम्र सौन्दय स्पश पा
प्रिये तुम्हारा
यह ब्रह्माड स्वत ही सारा
स्वर-संगति में बँधा अखड
सजन लय नर्तित

श्री शोभा स्वर्गों मे
होता रहता विकसित
सित इगित मर्यादित ।
तुम
करो भ पथ फिर शासित ।

(पाँच)

तुम नही होती
किसे म, प्राण, पहनाता
सुनहली ज्योति ध्वनि पायल?
जिन्हें गढते किरण चुंबित
लहरियो के मुखर करतल।

मचलती ही क्यो लहरियाँ
दष्टि सर में?
स्वग किरणें ही उतरती
क्या धरा रज पर?—
विचरती मुक्त अबर में।

तुम न होती तो
वसत कभी बनाता
रूप-मासल
रिक्त वन का अस्थि-पजर?
जहा बारह मास रहता
हिम अकिंचन
निस्व पतझर।

सास लेंता क्या समीरण
गय में भर हृदय-स्पदन?
गध घट अहरह उडेल
समन भ्रमर का
निर्निमिप करत कि अभिनदन?

लना ही क्या कप
पिरोती हार कलिया क
विटप की बाह म
करन समपण
फुल्ल यौवन?

कोकिला निश्चय न गाती!—
(सष्टि भी किसका सुहाती?)
जम क्या लती कभी वाणी?—
किसे करती निवदन
वह प्रणय क्षण?

रिक्त होता अह निखिल ब्रह्माड—
नभ का नील भाड
कही छलकना मातिया स
प्रम की कणा पिराने?
गय का स्मति-दग खोन?
प्यार कर चरिताथ हान?

खोजता किसको भला तव ज्ञान
खोल सहस्र लोचन?
गहन निशि का भेद
सूची-भेद्य तम घन!
भक्ति जप तप ध्यान
करते विफल आराधन!

रहस चुंबित विजन में
कहाँ कँपता बाँह में
कंपित लता सा
लाज किसलय रँगा
कोमल कामना-तन?

तुम न होती तो प्रिये
सौंदय के सित चरण छूकर
पार कर पाता कभी मन
सत्य के दुर्जय शिखर?—
तन्मय हृदय
भव सिंधु पय तर!

(छ)

गुभ्र लाज मे लिपटी
    क्या हानी दग आचल?
प्रकृति
    मग्न तुम ध्यान लीन
    आत्मस्थ जान कर!
म तो दख रहा तुमको ही
    चित स्वरूप
        उर आसो म भर!

निष्क्रिय साक्षी बन
    क्या हाय करेगा आत्मन्?
अद्वितीय एकाकी
    अपने म स्थित निजन!—

प्राण
    तुम्ही उसकी प्रकाश
        गति स्थिति लय
    जिनके चरणा में तन्मय
        माधन उसका अपनापन!

खोज रहा था, सुरुचि,
तुम्हारे सृजन-स्वप्न हित
आत्मा की मर्मभूमि
प्रीति रस द्रवित धरातल,—

अंतर-पथ से उतर—
जहाँ उत्फुल्ल
चेतना का ज्योतिर्मय
श्री सहस्रदल!

प्रिय,
अनश्वर विरज स्थाणु को
जिसकी पद शोभा वर
रज अंकुरित निरंतर
रस ग्रहण सृजन के
मुक्त दिगंता में नित
उद्घाटित करती—
जग में लो स्वर्ण युगांतर!

जीवन मंगल के
अमिताभ परोक्ष में हँस
अंत सुषमा के
प्रकाश पुलकित अरुणारण्य
शिवे,
शून्य को बना
सव सपन,
सृष्टि के क्रम विकास में
यदि नव स्वर-संगति भरते—
क्या विस्मय?

शाप
उन्-त मयना ही
रह जाती स्मति-हीन—

अकूल चेतना सागर
क्षोभ करता भाव मग्न
हम दोना ही को
निस्तल नि स्वर।

तुम्ही बोधमयि,
मेरी अत सत्ता हो नि सशय,
तन मन प्राणा म लय।
मरी शोभा प्रियता ही
धर चद्र बिम्ब तन
भरती तदगत रस परिरभण।

मर स्वप्नो क ही स्तवक
उरोज शिखर बन
गख धाप भरते उर में
रस नि स्वर गोपन।

मेरी ही भावाकुलता
बन किसलय-पुट स्मित
मुख पिग्नी
मित अधरा मत।

रस ममज्ञे,
तुम असीम सहृदयता वश ही
उदय हृदय में होती
वधू उपा वन,
लज्जानत, श्री मडित ।

इससे पहिले,
बाहो में भर
मधुर चुबनो से रँग दू मुख,—
शोभा-तमय अतर
हो जाता सुख विस्मत ।

प्रिये,
तुम्ही हो प्रकृति पुरुप भी,
युगल मिलन भी,
अमत प्रीति भी—
जिसके प्रति
मेरा तन मन
सपूण समपित ।

मुझे तुम्ही ने
निज शिशु सहचर चुना,
तुम्ही हो मा,
प्रियतमा, सखी भी,—
एक, अभिन, अगुठित ।

(आठ)

स्नेह यह
सित हृदय-सौरभ
भाव पखो में
तुम्हारी ओर धावित!

देह पखडिया
बसी रज गध में
पर देह रज के यह न आश्रित!

हृदय-स्वण मरद कण हो
सहज सांसा में प्रवाहित
तुम्हें सक्ष्म अरूप स्पर्शो से
प्रिये यदि करें वष्टित,—

या अजाने
मम हा रस भाव स्पदित,
जग कँप
आनद मे हा राम-ह्पित —

तो समझना,
प्रेम ने स्वर्गिक अगोचर
बाहुओं में बाँध
तुमको वर लिया,—
कर हृदय अधिकृत!

सूक्ष्म से अति सूक्ष्म,
भ्रमते, ज्योति से भी आशु गति वह
प्राण मन में भीग
करता भाव मोहित!

देश काल न रोक पाते,
स्वप्न बन, स्मृति बन,
हृदय को हृदय से
तद्गत सतत करता मनोजित्!

कहाँ तुम हो, कहाँ हूँ मैं,
प्रिय उपस्थिति
प्राण करती रस निमज्जित,—

पहुँचता मन उड़
तुम्हारे पास तत्क्षण,
मिलन इच्छा से
तड़ित गति राग प्रेरित!

तुम कहा हो अज परा (इ),
रूप सौरभ हृदय में वस
मुझे करती आत्म विस्मत,

देह रहती दूर स्थित
तन्मय स्पहा ही
सूक्ष्म तन धर
गले मिल्ती
गूढ परिचित।

(नौ)

कवि हूँ, प्राण, तुम्हारा,
निज से हारा।

सृजन कल्पना कर से
छूता कोमल-अग तुम्हारे,
फूलो में जो खुल्ते प्यारे
श्री सुषमा में तन्मय सारे।

सौरभ पीता हूँ अधरो की,
सुधा सरो की,
नव मुकुलो की गध सूघ कर,—
ललने,
मेरा हृदय तुम्हारा
स्वप्न-नीड भर।

प्राण सखी तुम,
चूम मौन शोभा कल्पित मुख
हरने मोह निशा पथ का दुख
नयी उषाएँ लाता भू पर
लज्जा मडित, निस्वर।

बाहो में भरने तन
निखिल विश्व शोभा
अंतर में करता धारण—
गड़ा वक्ष में आनन।

वह तन्मय क्षण,
मौन समर्पण—
खुल पड़ता उर में
विराट शोभा वातायन।

मां हो तुम
मैं दिव्य योनि से
निकला बाहर,
शक्ति-अंक भर।

शिशु सा
छिपा गोद में निज मुख
भूल भेद दुख,
हृदय-स्वर्ग में
स्वप्नों के पलने में स्वर्णिम
नव जीवन प्रभात में अरुणिम
झूला करता—

साम साम में,
रुधिर रोम में

अनुभव कर
माता, नव जम ग्रहण सुख!
चरणा का छूता म
श्रद्धा आस्था स नत,—
कवि उर अभिमत,
उतरें सित पग
धरा कमल पर,
जन मगल का
भू को दें वर!

पौ फटने से पहिले

शून्य द्रवित हो
बहता उर में
वन रम निर्झर !

कौन सुनहली
जग गुजार
हृदय में नि स्वर
तुमको करती
श्री साकार
जगत मे भास्वर ?

भाव सखी,
तुम कहा समा सकती थी मुझमें,—
मुझको ही तुम
तदाकार
कर रही निरतर !

(ग्यारह)

कौन कह रहा
तुम अरूप हो निराकार हो?
रूप तुम्हारा निखर
लांघता रति
अरूप-तट
चित सुषमा का
ज्योति ज्वार हो।
ध्यान लीन मन में
जगती जब
तुम स्मित वदने,
आभा दशने,
शोभा वसने
भाव यौवने
हृदय कमल पर भास्वर,—

कालहीन दीखता अनंत
प्रणत चरणों पर

शव सा लुंठित निःस्वर,
निश्चल, तदाकार हो!

परम प्रीति तुम
रूप अरूप एक,
तुमको वर,
जड चेतन
सोते जगते
स्मित भ्रू इंगित पर!—
भेद अभेदा की तुम
तद्गत सत्य सार हो!

भाव भंगिमा से
श्री शोभा पड़ती चरचर,
खुलते अंतर में
चिद वैभव के स्तर पर स्तर!

आर पार संभव?
अकूल अथ इति का सागर
प्रीति बिंदु ही तरी
भेद पल में जाते तर!—
तुम्हीं भुक्ति में मुक्ति द्वार हो!

अंध गहन भू निशि
सूची पथ पाना दुष्कर—
प्राण बिना तुमसे पाए
चिद्-दृष्टि ज्योति वर!
प्रीति सूत्र तुम
तुम्हीं भाव मणि सृष्टि हार हो!

पौ फटने से पहिले

भू विकास पथ पर
अदृश्य तुम करती विचरण,
समदिग जीवन में कर
तप रत मौन अवतरण।

प्राप्त कर सके प्रीति-स्पर्श
तुमसे जन भू मन,
दृष्टि समग्र जना का दे
उर आस्था नूतन! —
हृदय चेतना की स्वर्णिम झंकार—
प्यार हो!
कौन बताता
तुम अरूप हो, निराकार हो!

(तेरह)

रात्रि का एकात क्षण
उर कक्ष निजन।

प्रीति पागी
नीद भी जागी
तुम्हारे ध्यान में सो,
मिलन सुख स्वप्न में खो,—
हृदय कवि का भाव अनुरागी।

विलासिनि,
प्राण उमादिनि
निभत उर कक्ष में आओ,
न मुग्ध, और विलमाओ,
हृदय सित प्रेम विस्मति में डुबाओ।

देह में मिल दह हो लय,
हृदय म हो हृदय तमय
प्राण प्राणा स लिपट
आनद रस मागे अनामय।

स्वप्न शयन,
शरीर आत्मिक-स्पर्श सुख भागी!

भाव उन्मेषिनि,
विकासिनि,
उर्वशी सी उतर
भास्वर चेतना नभ से
त्रिदिव सौंदर्य में लिपटी अनश्वर—

मर्त्य से उठ स्वर्ग तक
सित भावना रस-श्रेणि
तुम बनती अगोचर!—

शंख वर्तुल
भाव गौर
मराल शावक वक्ष
शोभा-पंख खोल-तरुण दिगंतर
मोह लेता कल्पना को
स्वर्ग सुषमा के दिखा
गोलार्ध सुंदर!—
प्राण कैसे हों विरागी?

वधू तन्मयते,
निखिल संशय रहित मन—
रूप वैभव के बिना
होता अरूप अनंत निधन!

देह

आत्मा से कही
ऐश्वय पावन,—
प्रेम को सपूण कर सकती
हृदय मन वह समपण !

स्वग ?

रति शोभा-मुकुर भर,
अमर
शाश्वत
बन प्रणय क्षण,
आत्म त्यागी !
कवि हृदय
रस भाव अनुरागी !

(चौदह)

तुम प्रसन्न उर के
सित प्रांगण में आती हो,
जीवन मन का
जड विषाद हर,
मुसकाती हो।

अंतमन की
सहज सौम्य स्थिति ही
प्रसन्नता,
होती जिसमें लीन
बहिर्जग की विपन्नता,
प्राणों में
आनंद मेघ झर
बरसाती हो।

क्या प्रसन्नता ?
फूलो का शोभा प्रफुल्ल मुख
वे विपण्ण रहते
तो मधुकर होत उन्मुख ?

तुम्ही मौन प्रेरणा
गुजरण भर गाती हो।

बाह्य यत्न से
अत शाति
न होती निर्मित,
वह वरदान तुम्हारा,
होती स्वत अवतरित।

तुम्ही पूणता
स्वण सतुलन
भर जाती हो।

वधू चेतन,
जड, अपूण,
जजर जग खँडहर
इसको निज आनद निवास
बनाओ सुदर।—

तडित स्फुरण बन
तुम अतर-पथ खिलाती हो।

काटो की झाडी में
रुँधे फूल सा कोमल
जीर्ण रूढि कृमियो से
विक्षत भू-अतस्तल!—

जग मयी,
जग से अतिशय,
तुम अपने में स्थित,—
जन भू हो
श्री शोभा मगल में
दिव् कुसुमित,
ज्योति-गर्भ अरुणोदय
तुम जग में लाती हो!

(पन्द्रह)

मरकत घट में
माणिक मदिर
सुधा भर जीवित
मा धरती,
तुझको करता -
जीवन - अभिषेकित।

ओ वराग्य विमूर्छित भारत,
छान बीन कर
म समस्त
आध्यात्मिक तत्वो को
चिद भास्वर—
तेरे लिए सुधा सजीवन
लाया मादक,
तेर ही चरणा का रहा
पिता म साधक।

यह नव युग अवतरण सत्य
उतरा जो भीतर
स्वर्ण शुभ्र आलोक अमृत से
अंतर-घट भर,—

पूर्ण,—छलकता
सात्विक
रजत ज्वार में बाहर—
अमृत पान कर
अग्नि पान,
ओ मरणोन्मुख नर!

सत्यों की अन्वेषी तू—
यह रस संजीवन,—
ओ प्राचीन भरत भू,
सित श्रद्धा कर अर्पण,—

तत्व पान कर,
मुक्ति पान कर,
प्रवयस् जर्जर,
काया कल्प समस्त करेगा
यह बहिरंतर!

मरकत घट पी
जीवन होगा शस्य श्यामल,
माणिक मदिरा
मन शिराओं में तेजोज्वल
चित् शोणित
संचार करेगी
ज्वाला स्पर्शी,—

स्वण शुभ्र आलोक
प्रेम का
अतदर्शी
रस समग्र चत य मेर वन
भूत जलधि तर
नयी दष्टि देगा
जग क प्रति ।—

जीवन इश्वर
विचरण करता
तुम्हे दिखेगा
फिर जन म पर
सित अखड रस में ल्य
दीखेंग क्षर अक्षर ।

मनुज प्रीति की
सुधा पान कर
मुग्ध विश्व जन
धरा-स्वग
निर्माण करेंगे,—
सजन प्राण मन ।

(सोलह)

तुम्हें सुनहली धूप कहूँ ?—
सित स्पर्श मनोहर!
चंपक तन,
काचन विनम्र
सौरभ का अतर!

सखि, अरूप चेतना
भावना
देती हो सुख,
स्वय चद्र ही
सौम्य बन गया हो
जिसका मुख—
गौर चाँदनी
ढल कोमल अगो में
मूर्तित
सूक्ष्म भाव को
इद्रिय सुलभ
बनाती हो नित—

तब किसको भाएगा
प्राण, अरूप, अगोचर!
किसका स्पर्श
करेगा तन्मय
रोम हर्ष भर!

वही रेशमी ज्योत्स्ना
तन की बनती वेष्टन?
स्पर्श तुम्हारा
तन मन को
करता रस चेतन!

क्या न अरूप
प्रसार
तुम्हारे मधुर रूप का?
व्याप्त धरा में जो जल
वही न वारि कूप का?

भाव वत्सले
स्वप्न मांसले,
मैं हूँ विस्मित—
तुम्हें देख कर भी
क्या देख रहा मैं
निश्चिन्त?

छूने पर भी
छू पाता हूँ—
नहीं मानता,
तुम अरूप हो
स्मिते, रूप—
मन नहीं जानता।

प्रमे, अरूप,
रूप से पर—
रस सम्मोहन में
मुग्ध हृदय
तुमको पाता
तन्मय अर्पण में।

(सत्रह)

सित स्फटिक प्रम,
मन जिसकी माला जपता,
स्ववह्नि प्रेम,
जिसकी ज्वाला में तपता।
रस अमत प्रेम
जिसको उर तन्मय पीता
अहि दश प्रेम
रस गरल कठ में, जीता।

कवि प्रम-पीठ
जन भू पर रचन आता,
मह घणा द्वेष भय दश
प्रम-पद गाता।
विश्वास उसे
जग प्रम धाम इश्वर का
उर आकाशी
जन भ मगल के वर का।

लटकी अनत रस रज्जु
ऊर्ध्व अवर से
चढता वह,
पकडे श्रद्धा आस्था कर स।
भू जीवन निधि हित
करता वह आरोहण,
बन सके धरा-मन
प्रभु के मुख का दपण।

भावना रज्जु दढ,
सत रज तम गुण निर्मित,
सित स्वण रजत सँग
अयस-शूल भी गुफित।
छिदते रस ग्राही प्राण—
रक्त रजित तन,
बढ़ता मन अविरत—
सीती प्रभु करुणा व्रण।

पा सूय लदय
प्रेरणा दीप्त कवि का मन
छेडता मुग्ध
नव भू-जीवन के गायन।
मागल्य धाम हो
भुवन धरा रज प्रागण,
भू जीवन मन हो
मनुज प्रीति के दपण।

अतर-शोभा से निर्मित भू
प्रभु का घर
भौतिक भव हो
आत्मिक वभव पर निभर।

रे प्रथम बार अब
अह भाव केंद्रित नर
सित प्रेम मूल्य की नीव
धरा रज पर धर

रचता जीवन प्रासाद—
खोल लोकोत्तर
सामूहिक जन मगल क
स्वग दिगतर।

जन राशि मनुज-गुण हो
भू पर सयोजित—
जीवन समद्धि हो
बहिरतर सपोषित।

जा तम का घोर प्रहर
जन साधारण का
वह नव प्रभात आगम-क्षण
जाग्रत मन का।

चढता ज्या मन
झरता भू पर नव जीवन,
हटता चिन्मय क मुग्न से
मणमय गुठन।

जन भू ही इश्वर का आवाम—
न सशय
अयत्र न स्वग, न इश्वर —
यह र निश्चय।
निमाण करें जग का
हम पा प्रभु आशाय,
वह प्रेम,—
इच्छ भू-स्वग-सजन तप में ल्य।

पौ फटने से पहिले

(अठारह)

फिर उडने लगा
सुवण मरद
चिदवर से भर
त मय स्पर्शो स
मन शिराएँ
कपती थर थर!

उर दह भीति स मक्त,
रोम रस-हर्षित
ओ भाव माहिनी
मन अन पूण अनावत!

क्या करत कृत्रिम
जप-तप व्रत आराधन
तुम न गन मिन आम्या पथ स
कर विचरण—

जड को छू
नव जीवन मे करती चेतन।

स्वप्ना के क्षितिजा में
तुम खोल रही उन्मेषित
नित नए रूप के अतरिक्ष
अत सुख प्रेरित।

उर रूप तुम्हारा धर
नव श्री सुषमा से वेष्टित
होता तुममे लय
रति, समग्र रस अर्पित।

तुम मेरा तन धर कर
मन करती मोहित,
शव बनता शिव
पा शक्ति स्पर्श मत्युजित।

(उन्नीस)

जहा जहा तुम रखती
    शुभ्र चरण चल—
        भूतल
वहा वहा हो उठता श्याम
    दूर्वा श्यामल।
ज्योतिमय हो उठते रज कण
तडित स्पर्श से
    सूर्य चंद्र बन—
प्रेम
    कौन विश्वास करेगा
    जिसने कभी नही जाना हो
    स्वप्न चरण तुम सृजन भूमि पर
        कम करती विचरण।

भिन्न उर मरमी में सरसिज
रूप सृष्टि गढ़ना मित मनसिज
अर्पित कर तुमको पावक निज।

सजन चेतने,
स्वप्नो के खुलते
अतर मे स्वग दिगतर
अप्सरिया सी उडती
उन शोभा शिखरो पर!

गा उठते प्राणो के भुवन अचेतन,
देवदूत चलते
मोहित
मरकत घाटी में प्रतिक्षण!

जहा तडित अगुलि
करती सित इगित,
जहा मौन वजती पग पायल
ध्यान शयित
जगता अतस्तल!—

नए सूक्ष्म सौन्दय भुवन
उर मथन से उद्घाटित
प्राणो मे हो उठते जागत,—
भाव बोध सपदा
हृदय मे कर रस वितरित!

सवेदने,
हृदय ही मेरा श्यामल भूतल
सजन भावना ही दूर्वादल,
रूप प्रेरणा
तडित स्पश चल —

अतस ही
युग बोध तरगित
चित सरसी जल।

रति सुग प्रीत
मनो ल्हरियो में नित
नील चरण स्मित
शशि पद चुवित
भाव कमल अगणित
अपलक
श्री पद चिह्ना से
हो उठत प्रस्फुटित—
प्राण वर उपहृत।

(बीस)

प्राणो की सूक्ष्म सुरभि उड
प्राणो म छा जाती,
तुम अतर म आती।

शोभा के चपक मरद कण
मधुर उपस्थिति से भरते मन,
कौन मौन गुजार
स्वप्न मे सी जग
क्या कुछ गाती।

बुद्धि भूल जाती भव चिन्तन,
भाव पख उडते स्वर्गिक क्षण
उतर उपाएँ
नयी चेतना उरम लिपटाती।

स्वर्णिम अकुर-से सवदन
मन में उगते अतश्चेतन,
माणिक ज्वाला के चित जल में
जीवन शोभा होती।

श्रद्धा होती स्वत समर्पित
नव आस्था स भर उर दीपित,
प्राण,

सवगत तन्मयता जग
प्राणो में अकुलाती।

निखिल विश्व मन को कर अतिक्रम
अपने ही में स्थित, चिर निरुपम
मुक्त परात्पर हप शाति
तुम रोओ में बरसाती।

एक बार पा स्पश परात्पर
अनघ विद्ध हो उठता अतर
प्रीति

साथ तुम क्षर अक्षर पर —
रति प्रिय मति न अघाती।

(इक्कीस)

प्रिये,
तुम्हारी स्मृति आते ही
स्वर्णोज्ज्वल चित् लोक
हृदय में होता मुकुलित,
तन्मय कर सित अंतर!

झर पडते मन के सुख दुख व्रण
मधु आगम में झरता ज्यों
हिमवन का पतझर!

धुल जाती मन से
जग की रज,—
ह्रास निशा मे जो जग निद्रित,
हृदय मुकुर मे
श्री शोभा अम्लान
सहज हो उठती बिम्बित!

मघ पटल स निकल चाद
ज्यो इद्र धनुष मडल स्मित
लगता शोभित —
सूक्ष्म भाव किरणो से विरचित
मूर्ति तुम्हारी
करती उर आलोकित !

अतमन की सित प्रतीक तुम
बहिर्जगत में
अभी स्थूल छायांकित
लगता
एक अखड क्षणि म
भू जीवन में होगी
स्वर्णिम सजित !

रस चैतन्यमयी
तुम चद्र-तरी हो
जिसमें तिर भरा मन
नान नीलिमा नभ अनग्र क्षण भर म
वहाँ पहुँचता ध्यान लीन
मिन प्रीति स्वग में
जहाँ वास करती तुम
निम्नल
प्राण सुधा सागर में !

परा चेतने,
तन मन प्राणा में
विखरे वभव ही से जो
प्रान तुम्हारी प्रतिमा करते अंकित,
वाह्य ड्योढिया ही में फिर वे
मदिर का अनुमान लगाते
गढते मूर्ति
वहिर्वैभव पर विस्मित!

शशि शेखर स्मित वगूरे की
झलक देख भी ले यदि
विद्या गर्वित,—
ओ हिरण्य सौदय रश्मि गुठित
जब तक, जन का अतर हो
नही तुम्हारे
तन्मय स्पर्शो से रोमाचित,
स्वय तुम्ही साकार रूप धर
हो जाओ न हृदय में तदगत अंकित!

तब तक, अतिमे,
जग की भूलभुलया म मन
भटका करता
वाह्य सिद्धिया प्रति आकर्पित—
हो पाता न भाव रति विस्मृत
चरणा पर
सर्वस्व सर्मापित!

हे अंतर्मयि
जीवन मन के सभी स्तरों पर
स्पर्श पा सके हृदय तुम्हारा
सतत तुम्हीं में तन्मय—
लय हो अहं रचित जग सारा—

भू जीवन का सूर्य दिशा दे
जन प्रांगण में
उतरे नव अरुणोदय !

(बाईस)

किस असीम सुषमा के
स्वप्न-ग्रथित अंचल में
प्रिये, लपेट लिया तुमने मन।

द्रुपद सुता का चीर
रेशमी मसृण स्पर्श की
सूक्ष्म प्रेरणा से पुलकित कर
अंतश्चेतन,
मार्जन करता
नव रूपों भावों के वेष्टन।

ज्यों प्रभात मुख स्मिति से
जग की निखिल वस्तुएँ
हो उठती श्री शोभा मंडित—
बदल विश्व ही जाता मेरा
स्वर्ग चेतना से हो दीपित।

अयि इद्रिय सुलभ,
ये इद्रिय भुवन
स्वग के रस पावक से प्राण प्रज्वलित
दश्य गध रस स्पश शब्द की
भाव श्रणिया करत नव उद्घाटित।

सौरभ स आकृष्ट
तुम्हार सित भुवना की
निखिल सत्व ही
स्वण भग सा मम गुजरित—

नव जीवन मगल का मधु
सचय करन को
मुग्ध तदगत
करता प्रेरित।

रम वसत नव आया!
प्राणा में सोई समीर जग
अतर करती गध उच्छवसित!

जग स्वप्न नभ में
नया भाव सौन्दय
हो उठा ज्वाल पल्लवित
चित मरन्द में
नए मम्म मधन्न के स्वर
व्याप्त मम में पुलकित!

जन प्रतीति चेतन,
हृदय के सित प्रहप
सौदय लोक में
मानव मन हो जागत—
पतझर वन सी
झरें विकृतिया वहिरतर की,
प्राण मनस हो सस्कृत!

प्रिय दर्शिनि
भू की कुरूपता मिटे,
इद्रिया तन्माना हो विकसित—
तुममे रह सयुक्त
मनुज जीवन हो पूण,
समद्ध, अखडित!

(तेईस)

प्रिय,
　　अदृश्य चरण चाप सुन
　　भू होती तृण रोम प्ररोहित
तो विस्मय ?—
　　　जड   रम चेतन
जीवन शव हात
　　　पद   छ जीवित।

　　　　　　　　अचल सा फहरा समीर
　　　　　　　　हो उठता आत्म-बोध रज सुरभित
　　　　　　　　बाग मसृण स्पर्शो स
　　　　　　　　पवत कपित
　　　　　　　　सागर   चद्र तरगित।

खिच अगा की भाव गध
मन हो उठता भृग गुजरित
प्राणा में
　　　स्वर्गिक स्मास्न म
　　　　　होता मगीन प्रवाहित।

आत्मशील्मयि,
शोभा वाहो में बंध अतर
हो उठता रस-त मय, विस्मृत—
वह सित विस्मति मुझे
सूक्ष्म आनद-लोक में
करती जागत।

बदल विश्व पट जाता तत्क्षण।—
विहग मधुप गाते उमेपित
लहरें मणि पायल कर झकृत।
चद्रलेख मस्तक पर शोभित,
उपा लालिमा हो उठती
सौभाग्य लाज से मडित।

काम पान कर
अग्नि मदिर
पावन अधराऽमत
विश्व सजन स्वप्ना में
रहता व्यस्त अतद्रित।

प्रीति लाजमयि,
इद्रिय तुमको ही पाती
रस गध स्पश में—
बुद्धि तुम्हें ही
भावा में, चिन्तन विमश में।
अत स्थित तुम रखती मन को
शोक हप में।

अतयुवति,
नया ही मानव बन
जगता म
तुमम ध्यानावस्थित
उर
नि सीम शाति म मज्जित —
साथक स्वर-सगति म बँधता
भू जीवन
सघपण मथित—
तुमको अपित !

(चौवीस)

कुछ भी नही यथाय जगत में
तुमस अकलुप, मोहक, सुदर
किरण-तन्वि, चेतना स्वण से
विरचित गोभा-सूक्ष्म कलेवर।

भय सशय हो जाते अवसित,
इच्छाएँ तुमको पा उपकृत,
स्वग धरा में जो कुछ भी प्रिय
भाव-तरुणि, तुम उससे प्रियतर।

नही जानता, प्राण, कौन तुम,
जगती उर में ध्यान मौन तुम,
श्री सुपमा में तन मन मज्जित
रम तन्मय करती नत अतर।

तप्त देह रज, रोम प्रहर्पित,
भाव जगत् चित-स्पश सतुल्ति,
स्वर सगति में गॅंध-से जाते
अतरतमे समस्त चराचर।

भीतर से तुम समधिक बाहर
सक्रिय रखती भू-जीवन स्तर
नव विकास क्रम को गति देती
विश्वरूपमयि, काल सिधु तर।

मन बाहर विचरे या भीतर
पूण निछावर हो वह तुम पर
शिव से शिवतर निखर भावना
भू मगल रत रहे निरतर।

(पच्चीस)

सुधा सिंधु में रहती हो तुम
मथे न संशय
प्राण, उपस्थिति से ही
उर का कलुष गरल गल
जीवन मंगल में
परिणत हो जाता मधुमय।

पुराकाल में हुआ
अमृत विष का जब वितरण
शिव को
विष को पड़ा कंठ में करना धारण।—
रहे पृथक ही अमृत गरल
दो तत्व सृजन के—
तुमने रूपांतरित उन्हें कर
जन भू मन में
दिया विश्व को अतर्क्य का
परम रसायन।

कल का अमत गरल बन
गरल अमत सजीवन
भव विकास का गौरि,
बन गया श्रेय सचरण !

विगत राशि गुण महत क्षुद्र घुल,
पाप पुण्य धुल
भू श्री शोभा गरिमा में
होते रूपायित,—
ज्योति स्पश पा
जीवनमयि, कर आत्म उनयन !

क्षमे
अनत तुम्हारी बाँहें
अग जग विस्तत
नख शिख
आत्म नील तुम
धवल प्रीति अपरिमित—
रवि शशि दग,—पथ करते दीपित
उडुगण हार वक्ष पर शोभित !

म हूँ विस्मित !—
क्या भारत
युग युग से आत्मज्ञान से प्रेरित
युग युग से श्रेयस प्रति अर्पित,
आज अध-सस्कृत जग का कर
अध अनुकरण
हाय खो रहा निज गौरव धन !—

क्या न पुनः विष पी जन भू का
युग सागर से मथित—
अमर प्रेम की बाहें खोल
नहीं समेटता भू जीवन को
(जो बहु भेदों में खंडित!)
अंतर्विरोध कर प्रशमित!

उसे नम्र रहना,—
विनम्रता आत्मा का गुण,
भू संकट सहना,—
जनगण हित व्रतपथ चुन!

मनुज प्रीति में उसे बाँधना
युग भू जीवन—
निज दिग भ्रांत निकट देशों के
पूज घृणा व्रण!

अणु से कहीं महत
आत्मा का बल निःसंशय,
(वह ध्वंसात्मक,
यह रचनात्मक)—
सब प्रेम ही
चिन्मय आत्मा का गुण निश्चय!

वही श्रेय की शक्ति,
उसी की अंतिम दिग् जय!
दृढ़ आस्था रख
जन हो निर्भय!

(छब्बीस)

सक्ष्म गध फली अबर में।
मधुर प्रणय की भाव-वदना
    अँगडाइ लेती अतर में।

बसी सुरभि तन मन प्राणा में
फूट रही तन्मय गानो में
बाहर भीतर व्यथा सुनहली
    छाइ कोकिल मधुकर स्वर म।

उमडा प्रेम वह्नि का सागर
तपते सुख में चद्र दिवाकर,
ज्योति सूत्र तुम—
            गुथी अगोचर
    स्वग मत्य में क्षर अमर में।

मुकुलित स्वप्न-स्मित नयन में
स्वप्न भुवन वह विस्मित मन में
भाव तडित सी प्राण जलद में
    लिपटी तुम उर के स्तर स्तर में।

छाया वहिरंतर संघर्षण
आदोलित जग का उपचेतन,
आया भू मानस मथन क्षण—
व्याप्त वेदना सचराचर में।

वहिर्भीत युग मानव जीवन
भय संशय से जन मन उन्मन,
गहन व्यथा-तम वन ठहरी तुम
अरुणोदय के प्रथम प्रहर में।

सूक्ष्म गंध में मज्जित अंग जग
स्वप्नों से चिह्नित जन भू मग,
दौड रही रस माणिक लपटें
जन जीवन की लहर लहर में।

भाव व्यथा से परमे निखरो
रूप सत्य बन भू पर विचरो,
स्वप्न तरी तुम,
पार लगाओ
युग मन वस्तु-तमस सागर में।

(सत्ताईस)

बाँधे चित सौन्दय सिन्धु
सित बाहु पाश म
तुम रस मज्जित करती अतर।
स्वण हस भरते उडान
उर अतरिक्ष म—
जीवन शोभा
पडती झर झर।

सत्य स्वत ही भाव रूप धर
तुममें होता शोभा-गोचर
प्रीति तन्मय
रस ग्रहण का स्पर्श
प्राण तन मन लेता हर।

रंग इन्द्र धनुष तृण चुन कर
कल्प नीड रचना हो सुखकर,
बिना तुम्हारी दृष्टि रश्मि के
चित्र बिम्ब स्वर
आडंबर भर।

फिर भी प्रिय पगध्वनि सुन प्रेरित
जो अरूप छवि कर छायाकित
भू पथ करते शोभा दीपित—
उन्हें सहज मन देता आदर।

बरस रहा आनद अपरिमित,
तन मन स्वर सवेदन पुलकित,
स्वर्णिम अकुर सी तुम शोभित
प्राणो की भू में रस उवर।

हृदय सत्य की शोभा प्रतिमे,
सित अतर ग्रहप की अतिमे,
उतर रही तुम स्वग उषा सी
दीप्त भाल पर चद्र रेख धर।

स्वप्न-सेतु रच भाव मनोहर
विचरण करती बाहर भीतर—
वितरण कर तुम चिद् रस सपद्
धरा स्वग को बाध परस्पर।

(अट्ठाईस)

स्वण तार सी
कौन चतना
द्यावा पथिवी म रस गुफित ?—
मम प्रीति क
अमत स्पश से
आज हो उठी उर में झकृत !

तन मन क मूल्यो म सीमित
जन भ जीवन जजर खडित
जुगनू बन
चिन्मणि किरीट रवि
अधकार क्षण
करता वितरित !

बन्द पवन
रज कण बन
लुठित—

रस समुद्र
  अंजुलि पुट गुंठित,
तृणवत नत
  हत सत्पौरुष वट
रेंग रहा
  पदम में कुत्सित!

स्वर्ण किरण
  छू कर जन भू मन
भय संशय
  तम में जाती सन,
वस्तु रूप ही सत्य,
  देह रज
आत्मा को करती संचालित!!

पक्षघात पीड़ित मानव मन
  सत्य न अब कर सकता धारण,
पंगु आत्म पौरुष
  लँगड़ाता
रस अतृप्त भव-तृष्णा मर्दित!

भले विफल हो
  सूक्ष्म भाव-श्रम
बढ़ता ज्ञान
  जगत विकास क्रम,—
असफलता ही
  लक्ष्य सिद्धि की
प्रथम सफल श्रेणी—
  यह निश्चित!

(अट्ठाईस)

स्वण तार सी
कौन चेतना
द्यावा पथिवी में रस गुफित ?—
मम प्रीति के
जमत स्पन से
आज हो उठी उर में झकृत !

तन मन के मूल्या म सीमित
जन भ जीवन जजर खडित
जुगनू वन
चिन्मणि किरीट रवि
अधकार क्षण
करता वितरित !

वत्र पवत
रज वण वन
लुठित—

रंग समुद्र
अंजुलि पुट गुंठित,
तृणवत नत
हत सत्पौरुष वट
रँग रहा
कर्दम में कुत्सित।

स्वर्ण किरण
छू कर जन भू मन
भय सशंक
तम में जाती सन,
वस्तु रूप ही सत्य,
देह रज
आत्मा को करती संचालित!!

पक्षघात पीड़ित मानव मन
सत्य न अब कर सकता धारण,
पंगु आत्म पौरुष
लँगड़ाता,
रस अतृप्त भव-तृष्णा मर्दित।

भले विफल हो
सूक्ष्म भाव-श्रम
बढ़ता ज्ञान
जगत विकास क्रम—
असफलता ही
लक्ष्य सिद्धि की
प्रथम सफल श्रेणी—
यह निश्चित।

नात मुझे,
    तुम सार सत्य सित
विम्ब जगत
    तुम पर अवलवित,
करवट लती विश्व चेतना,
    एक वत्त
        होने को अवसित।

इसीलिए
    स्वप्ना से स्पदित
कवि रस मानस
    आज अतद्रित—
भू मगल मधु सचय करने
    स्वण भग
        उर भाव गुजरित।

(उन्तीस)

भावों की बँट
सूक्ष्म रज्जु मित
बाँध रही तुम जन भू मन को
स्वर्ण ऐक्य में,
प्राण, अपरिमित!

गूथ हृदय स्पंदन स्त्री नर के
भेद चूर्ण कर बहिरतर के,
रस स्वर्णिम चेतना ज्वार में
भू मन के तट
करती प्लावित!

देह भावना रज में सीमित
राग चेतना मुग्ध अवगुंठित,
सूर्य स्पर्श से प्राण-पंक में
प्रीति पद्म
तुम करती विकसित!

श्री सुषमा के स्वर्ग दिगंतर
खोल हृदय में सित चिद अंबर,
तुम जीवन का मृण्मय आनन
नव प्रकाश से
करती मंडित।

कौन अनाम सुरभि उड गोपन,
जाने तन्मय करती तन मन
देह प्राण मन की सीमाएँ
रस प्रहृष क्षण में
कर मज्जित।

स्वप्न क्षितिज करते दृग विस्मित
भाव स्पर्श प्राणों को पुलकित
युवति, सुनहले संबंधों के
प्रीति सेतु
तुम करती निर्मित।

उर के बिखर सूत्र सजो कर
भाव शृंखला गढ तुम दृढतर
अहं मग्न जन कूप वृत्ति को
प्रीति स्पर्श से
करती विस्तृत।

मनुज-सत्य ही जीवित ईश्वर
जिसे प्रतिष्ठित होना भू पर,
राग चेतना के विकास पर
भू जीवन विकास
अवलंबित।

(तीस)

तुम मेरी हो,
हाँ, सचमुच मेरी हो।
विस्मित मत हो,
सखी रूप में
तुम समग्र मेरी हो।

मुझ अधूरा कम ही भाता,
हृदय पूणता के प्रति जाता।
तुम्हें प्यार करता म मन से,
हृदय सखी तुम, बडी वहन से।

देह प्रीति से
यह रति ऊपर,
धीरे ही आस्था होगी
तुमको चिद गति पर।

निज मन में मेरे सँग रह कर
शुभ्र भाव लहरों में वह कर
सशय रहित करो निज अतर।

स्वग ज्योति का सित वातायन,—
खोल रुद्ध भू मन में नूतन,
भू विषाद म हर जाऊँगा,
नयी चेतना बरसाऊँगा।
युग सघर्षण के
जन उर व्रण भर जाऊँगा।

आधा धूम तुम्हारे मन का
मिट जाएगा—रज भय तन का।
शत प्रतिशत भय सशय
तब होगा निर्वासित
जब सामाजिक स्तर पर
प्रेमा होगी स्थापित।

भू विकास की सप्रति जो स्थिति
मन स केवल सत्य प्रीति को
मिलनी स्वीकृति।

जीवन स्तर पर पीछे होगा
बोध प्रतिष्ठित
जब भू मानव
होगा सस्कृत।
शक्ति पात से
मन शिराएँ होगी झकृत
हृदय
नयी स्वर्गिक शोभा गरिमा म स्पदित।

निष्क्रिय शुष्क विराग मिटेगा
जीवन मन का
मजन-रूप म प्रकटित होगा
उर जन जन का।

सूक्ष्म तडित् से जाग्रत होगा
निद्रित अंतर,
सक्रिय होंगे भू जीवन के
बहिरंतर स्तर।

रह पाएगी नहीं
मनुज के प्रति विरक्ति तव
धरा प्रीति में परिणत होगी
मूत भक्ति जन।

रहे देह में क्या मन सीमित?
खुलें भावना के दिगंत—
आत्मिक ऐश्वर्यों से
आलोकित।

भू जीवन चेतना अनंत—
न पिंजर बद्ध रहे भू मन
पति सुत परिजन से ग्रसित
देह भय पीड़ित।
प्रीति ग्रथित हो भू नारी नर
काम तमस के कूप से उबर।

विश्व विकास स्वयं क्या होता?
बीज आप्त नर उसके बोता।
जो विकास ध्वज-वाहक होता
वह भू जीवन साधक होता।

ईश्वर मुख में होना परिचित
मित चैतन्य स्पर्श में दीपित।
प्रभु से ही पा वह सित इंगित
गुह्य बोझ में मंथर-गति नित—

नयी दिशा देता जीवन को
संयोजित कर
विघटित मन को।

कवि होता सम्राट न
वह सेना अधिनायक
होता सित चित रस चातक,
जन भू उन्नायक।
नहीं बदलता वह जीवन को
मात्र दृष्टि भर देता जन को।

दृष्टि?—चेतना जो नव
चुपके पैठ हृदय में
विकसित होती शन
नए युग अरुणोदय में।

भाव पल्लवित-पुष्पित होकर
उर में स्वर्णिम चित सौरभ भर
श्री शोभा मांसल करती वह
गत जीवन वन पतझर।

इसीलिए,
चाहता प्रीति की शुभ्र पीठ बन
हृदय ज्योति का करा
देह रज पर आवाहन।

(इकत्तीस)

धसी किरणें बरस रही
जाने किस नभ से
प्रिय-श्री पाटल का मुख
फाल्गुई आभा से
दिखता परिवृत।
शुभ्र कुंद कलियां
स्वर्णिम हँसमुख मंडल से
लगता शोभित।

किस प्रेमी ने
प्यारी पत्नी के विछोह में
प्रिय शोभा श्री
भू पलका पर करने अंकित
स्मृति-पाटल को जन्म दिया
स्वर्गिक सुख सुषमा से कर भूषित ?

फूलो की पखडियो स रच
अमर काय सित,
वानस्पत्य जगत कर
स्वग मुकुट से मडित।

विश्व युद्ध को अर्पित
इसका शाति नाम
बरसाता उर मे
शाति अपरिमित।

अब समझा
ये किरणें
नम्र प्रेम की किरणें
बरस रही चेतना स्वग से
जन भू का मन वरने।

हृदय चेतन
सूक्ष्म तुम्हार अमत स्पश से
हो उठता रज का रूपातर
तण तरुओ क जग स भी
स्वर्गीय दीप्तिमा पडती यर यर।
—निमम रह सकता उनस प्रति
क्य तक मानव अतर?

शानि चद्रिके
एक सास्कृतिक सूय
अस्त होन का निश्चय
तुम्हें मगमयि द
निज उर सिहामन सविनय।

पौ फटने स पहल

अभी न उस पाटल ने
ज म लिया जन भू पर—
जिसकी स्वप्नो की पल्को पर
अमर प्रीति की पखडिया खुल
अत सुदर—

सुधे,
तुम्हारे रसश्वय के
स्वण दिगतर
खोल सकगी जन मन में—
जग को उपकृत कर!

अत शोभा का विस्फोट
श्रवण कर नि स्वर
जाग उठेगा सोया
आत्मा का रस अबर!

तभी सजन उवर भू रज पर
पूण शाति लेगी सित ज म
मूत कर तुमको—
नश्वरता ही में
अविनश्वर!

पोस' नामक रोज से प्रेरित।

(बत्तीस)

कितनी दया द्रवित लगती तुम
माँत प्रकृति बन
मरी कुटिया
उर में करती रहती धारण।
उन्हें गन कर स्नेह निवारण।

दोषा में गिर
दोषा स फिर उठ प्राण मन
दाषा ने ही किया
विमाता बन
मेरा क्रण लालन पालन।
दुबलताआ से ही म
निन नवीन सीच
बढ सका निरतर—

प्राण, डूबने दिया न तुमने
बन असीम सहृदयता सागर!—
चिर कृतज्ञता से
बरबस ही
आँसू पड़ते पर झर!

क्या मैं शिशु से
कभी प्रौढ़ बन पाया?—
स्मरण न किंचित!
माँ, तुमको करनी थी
कितनी सेवा अर्पित!—

पर, मैं फिर अब
वृद्ध बाल बन
तुम्हें पुकारा करता प्रतिक्षण!

ओ अनंत यौवने,
तुम्हीं नव स्तन्य दान दे
मुझमें
नव मानव आत्मा का करती पोषण!

गाता मेरे शोणित में
वह स्वर्ग स्तन्य वह,
शोभा ज्वाला में
होता रहता उर रह रह!

जो करता
    मन का प्लावन
    धरती पर छाकर
अतल निमज्जित कर दे
    मनुज क्षुद्रता दुस्तर,
युग युग का
    किल्विष विषाद हर।

जन भू जीवन मंगल स्वप्नों से ही प्रेरित
अंतरतम में
नया विश्व मैं करता निर्मित,—

दोष शुद्ध हो जहाँ न भले
        मनुज का जीवन
भाव शुद्ध हो
        पर मानव मन।

दोष प्रगति-सोपान शन
        बन जाते सत्वमय,
अनघ-स्वप्नमयि
    जो अंतर तुममें रस-तन्मय।

(तैंतीस)

तुम्हें ज्ञात हो,
कभी न मन में आया
मैं हूँ मातृ-हीन,—
दारा सुत दुहिता
सखी प्रेमिका से भी वंचित।

रहा सदा उर भाव लीन—
मा तुम्हीं ज्ञात अज्ञात रूप से
पूर्ति प्रेम की करती रही
हृदय में हो स्थित।

अब लगता
पत्नी संतति प्रणयिनी
सखी—सब मात्र
प्रीति के लघु स्फुलिंग भर।

जी करता,
मन का प्लावन
धरती पर छाकर
अतल निमज्जित कर दे
मनुज क्षुद्रता दुस्तर
युग युग का
किल्विप विपाद हर।

जन भू जीवन मगल स्वप्नो से ही प्रेरित
अतरतम में
नया विश्व म करता निर्मित,—

दोप शुद्ध हो जहा न भले
मनुज का जीवन,
भाव शुद्ध हो
पर, मानव मन।

दोप प्रगति-सोपान गन
बन जाते सरसमय
अनघ-स्पर्शमयि
जो अतर तुममें रस-तन्मय।

(तैंतीस)

तुम्हें ज्ञात हो,
कभी न मन में आया
मैं हूँ मातृ-हीन,—
दारा सुत दुहिता
    सखी प्रेमिका से भी वंचित।

रहा सदा उर भाव लीन—
मा तुम्हीं ज्ञात अज्ञात रूप से
पूर्ति प्रेम की करती रही
    हृदय में हो स्थित।

अब लगता
    पत्नी संतति प्रणयिनी
    सखी—सब मात्र
प्रीति के लव स्फुलिंग भर।

तुम निसीम प्रेम पावक घन,
जिसकी चिनगारियाँ नगण्य
सूर्य शशि, उडुगण !—
दिशा काल मुख
जिनसे भास्वर !

सब अभाव भर दिए
रिक्त कवि उर के भरे
तुमने अतुले,
भाव मनोरमता में मूर्तित !
अमित प्रीति की बाहु घेरे
रहो मुझ—अंतर कर पुलकित !

जिसे स्पर्श मिल चुका
तुम्हारी अमृत प्रीति का
एक बार,
उसको मा
छाया ही सा फीका नीरस
लगता असार संसार—
सार जिसकी तुम निरुपम !—
स्वयं विलय हो जाता
अहं रचित जग का भ्रम !

और प्यार ?
वह बन प्रकाश मणि द्वार
खोलता नित अनंत
शोभा ...गित
जग सम्मुख
दृष्टि स्वप्न ही सुल
होती जनमुख !

कितनी शोभाओं में तुम
        चलती जन भू पर!
कितने मीन नयन, किंशुक नासाएँ,
किसलय अधर, कपोल मुकुर-से
      भाव मुग्ध रखते अंतर—
शिशु हम वक्ष, कृश कटि
मांसल अवयव शोभा-संगति भर!

खुल पड़ता मन मंजूषा का वेष्टन
    हीरक मणि सी हृदय मध्य स्थित
    करती तुम अंग-जग आलोकित—
लगता,
        तन मन मात्र आवरण
        तुम्हीं वास्तविक सत्य, स्वयं,
            जिस पर जीवन अवलंबित!

(चौंतीस)

पग पग पर
मुझसे त्रुटि होती!
सूक्ष्म चेतना क्षेत्र
स्थूल मति
निज विवेक बल खोती!

ज्योति-स्पर्श उर करता तन्मय
देह भाव-तम उपजाता भय,
पंगु बुद्धि
संशय द्वाभा हत,
व्यथा भार श्रम ढोती!

मूल्यों का संकट युग भीषण,
कौन करे जीवन निर्देशन—
आत्मा मन या रज-तन—
कहीं हृदय-चेतना रोती!

प्रिये, हृदय जब तुममें तन्मय
तन मन आत्मा एक असंशय,
उर्वर जीवन रज में तुम नित
नव प्रकाश कण बोती।

आत्मा के प्रतिनिधि स्त्री-नर मित
देह बाध में रह न सीमित,—
अनघ प्रीति में बाँध देह-मन
तुम रज कल्मष धोती।

भाव शुद्ध हो मनुज मग्न हृदय
ठहरा नव जीवन अरुणोदय,—
अन्य हृदय में होती जब तुम
देह भावना सोती।

राग चेतना का भव सागर
तुमुल तरंग मथित जन अंतर,—
रजत-सीप उर प्रणति,
स्वाति जल प्रीति,
हँसे चित मोती।

(पैंतीस)

दृष्टि मुझे दी प्रभे,
देखता हूँ म जग को!—
बन भुजग-स
युग भू जीवन
क्रम विकास मग को!

व्यक्ति न अब,
जन त्रिविध शक्तिया क
प्रतिनिधि भर
भूत भविष्यत में रण
गुंठित स्वण युगातर!

क्मा वितरण
विश्व शक्तियो का!—
जग की विधि!
उद्वेलित आमूल
गरजता
क्षुब्ध भव उदधि!

कृमियों-से रेंगते मनुज
पद-दलित प्राण-मन,
भौतिक तम में
वहिर्भ्रांत
संप्रति भू जीवन !

भोग लालसा मद विस्मृत
जीवात्मा का क्षण
शासित करता
अंतर को
आवेश अचेतन !

कौन वनस्पति
पशुओं का जग
आज सँजोए ?
मनुज प्रेत
जब स्वयं
मृत्यु निद्रा में सोए !

नहीं जानता,
अणु हुंकार
भरेगा भू मन
या तुम ला
जन भू जीवन में
आत्म संतुलन—

श्रेय प्रेय में
स्वर संगति भर
तम भ्रम मोचन

क्षुधे, करोगी जन मगल,
श्री सुख सवधन!

एक हाथ में
आणव ध्वस—
अपर कर में धर
नव चतय सुधा घट,
स्मेरमुखी,
हँस निस्वर—

तुम भगुर तम का करती
तम ही से भजन—
नव प्रकाश का
फहराए
जग में जय केतन!

स्वप्न तरणि हे,
देख रहा म
उठती जन भ
झुकता अवर
नव स्वप्ना के
पग से कपित
युग नर अतर!—

बाह्य ध्वस पट में
अतमन करता मजन
बदल रह जन
बदल रहा भू मन
नव जीवन!

पौ फटने से पहिले

(छत्तीस)

आज सभी कुछ जग में—
विद्या विभव विलास अपरिमित
सुख सुविधा साधन बहु इच्छित
शशि मंगल ग्रह पथ भी अर्जित—

मानव उर में
किन्तु शांति संतोष न किंचित!
सुलभ सभी कुछ—
कहीं नहीं तुम
स्वल्प हृदय कोने में भी
मा, प्राण प्रतिष्ठित!

आज तभी तो
दृष्टि हीन विज्ञान ज्ञान,
निष्प्राण, विरस, सौंदर्य म्लान!—
मानव कर अर्जित
स्वर्ग साधना का मणिहार
भुजग बन विषधर
डँसता जग को
दर्प स्फीत—फुत्कार मार!

जन मागल्य न विश्व शोध में,
सागिक्ता ही सत्य शोध मे,
हीन भावना क्षीण प्रेरणा !—
ऐक्य सगठित यदि—
विरोध में !

तुम्ही नही जब,
विजय हप क्षण
सकल पराजित
विफल त्रोध म !

विद्युद दीपित बाह्य विश्व पथ
रुद्ध तमस स आत्मा का रथ,—
हृदय ज्योति क विना
मिल भी कस
जीवन सागर इति अथ !

हार गइ हत बुद्धि
फन मथ
व्यथा अकथ,
मग जीवन विरथ !

विना रनण के
पट यजन क्या ?
विना अजरता
मजीवन क्या ?
जिना तुम्हारे
मय ही नहा
प्रा स्वग का भी प्रागण क्या !

सूर्य नहीं करता जग ज्योतित,
नहीं चंद्र ही शीत रश्मि स्मित—
बुद्धि प्राण तन मन जीवन की
तुम्हीं सृष्टि-स्वर-संगति जीवित!

निखिल सत्य की सत्य
ज्योति की ज्योति,
हृदय में चिर अंतर्हित!—
तुम्हीं जगत् में नहीं प्रतिष्ठित,
सम्य जगत में वही प्रतिष्ठित!

(सैंतीस)

जिस भू पर
        पगध्वनि न तुम्हारी
            हो प्रतिध्वनित
विस्मय क्या
    वह आग्नेय से
        हो रण गर्जित।

यह भौतिक जग
    मृत् घट भर जो कुंभकार का
घृणा पात्र वह बन
    बन या भुवन प्यार का?—

घट घट में
    गुरु प्रश्न हो रहा मौन गुंजरित—
कौन अभाव मनुज में
        वहाँ मन्यता खंडित।

ज्ञान रुद्ध कर
    भरा रहेगा कहीं सरोवर?
अमृत स्रोत तुम,
    जड़ जग केवल मृत संचय भर!

पा नित मिल चित स्पर्श तुम्हारा
    भव नव जीवित—
बहिर्भ्रान्त जग
    हृदय ज्योति वंचित
        जीवन मृत!

तुम्हें देख कर
    अंध तिमिर बनता प्रकाशमय,
    तुमसे रहित प्रकाश
    तिमिर पर्याय,—न संशय!

बुद्धि प्राण तन मन ही में
    युग मानव सीमित,—
हृदय हीन,
    आत्मा के स्वर से
        निपट अपरिचित!

आत्मा नहीं प्रकाश मात्र ही
    सक्रिय प्रीति अपरिमित,
सूक्ष्म सूत्र वह
    बुद्धि प्राण मन जिसमें गुम्फित!

गर्जित—
हर्षित!
पौ फटने से पहिले

वह प्रभु प्रतिनिधि हृदय ज्योति,
एकता मूर्ति सित
प्राणारोही बुद्धि अशुभकर
अह विभाजित।

जिस भू पर
सित पगध्वनि
अध अह पद मर्दित
वहा अमगल
लोक ध्वस ही
समव निश्चित।

(अड़तीस)

नाच, मन मयूर नाच,
प्रलय घटा छाई,
विद्युत् अग्नि क्रांति ज्योति
उर में लहराई!

टूट विश्व तमस पाश,—
जीर्ण शीर्ण हो विनाश,
प्राणों ने क्रुद्ध
युद्ध दुंदुभी बजाई!

तन मन में लगी आग
जाग, रुद्र शक्ति, जाग,
दौड़ रही भाव तप्त
रक्त में रुलाई!

ऊर्ध्व दृष्टि खुले व्योम,
जगें सूर्य, जगें सोम,
हँसें रोम ज्योति-स्फीत
तम ने अँगड़ाई!

जीवन मुख हो प्रसन्न
धान्य धन्य जन विपन्न
धरा स्वर्ग मनुज दाय,
प्रकृति की दुहाइ!

सदसत मे हार जीत
डर न जन्म मत्यु भीत
ज्योति अंधकार बीच
छिडी फिर लडाइ!

प्रीति स्पर्श पा ललाम
शून्य पुन सजन काम
लीलामयि का विलास—
तम प्रकाश भाइ!

प्राण
गिर

पौ फटने से प

(उन्तालीस)

और उज्वल, और उज्वल,
और भी उज्वल बनाओ,
पक तल में मूल,
अतस कमल
चिद नभ में उठाओ।

प्राण सरसी, रति तरल जल,
तिरे ऊपर भावना दल,
मधु मरद सुगध स्वर्णिम
हृदय पखडिया खिलाओ।

नयन अपलक तकें प्रिय मुख
ऊघ्व अवर ओर उन्मुख,
भव निशा, तद्रिल हृदय में
प्रीति मधुकर स्वर जगाओ।

रश्मि कर से दीप्त प्रहसित
प्राण मन तुमको समर्पित
धरा पकज पर उतर
भू स्वग सिहामन वसाओ।

सूय उर मे, प्रिय तुम स्थित
चादनी सी शील कल्पित,
स्पश से कर मम पुलकित
नव विकास दिशा दिखाओ।

(चालीस)

कितनी सुदर हो तुम,
    शोभा के मदिर सी,
स्वप्ना के
    सुकुमार अजिर सी,
चपक फूग के
    तनु स्वर्णिम
        गौर शिखर सी।

—परिणत अब हो चुका
    स्नेह में सुखमय
गाढ हमारा परिचय।

सोचा,
    जब तुम इतनी सुदर,
    कितना सुदर होगा
    सुदरता का अतर।

मैंने
मुग्ध नयन डाल
नयनों के भीतर,
नील कमल उर में
प्रवेश ज्यों करते मधुकर!—

सोचा
नील मुक्ति में उड़कर
मुक्त विहग सी दृष्टि
स्वर्ग शोभा में हो लय—
चूम सकेगी
हृदय चेतना के अवाक
आरोह अगोचर
खोल
कल्पना के मराल पर!

किंतु तुम्हारी
भौंहों में बल पड़
दृगों से
फूटी जब चिनगारी—
निरपराध मन
बोल उठा तब
बलिहारी!
बलिहारी!

किसलय पुट की
कुंद मुकुल स्मिति से खिंच कर
मुग्ध पास ले गया मन निस्पृह
मधु माणिक घट में थी
फेनिल सुधा धार मिल निःसृत—

पर,
लौह शलाका से रक्तिम
द्रुत कँपे अधर,—
मुह फेर लिया तुमने
मुझको कर विस्मित!

स्वर्णिम कदब फूलो से मदु
उभरे उरोज छवि शिखरो पर
जब मने मस्तक धरा सुघर,—
तुम ज्यो वन पशु को देख त्रस्त
झट पीछे हट
कुछ अस्त व्यस्त
फिर मुझको जाते देख दूर
आश्वस्त हुइ
मन से समस्त!

हा सध्या को
जब फूल वेलि सी बाहो मे
मन क्षण भर बँधने को मचला,
फुकार उठी तुम,
फूल हार वह
फणधर सप पाश निकला!

सोचा मन ने हँस—
यही पुरुष की प्राण सखी?
जो तुमने लीला रच परखी!
त्वक पिंजर भीतर से निरखी!
तन इसका शोभा का मदिर,—
क्या अधकार का हृदय अजिर?

बोला अग्निप्त मन भाव मग्न—
    विन रज मूल्यों से प्राण चेतना
    स्त्री की युग युग से कल्पित।
    बलि पशु वह निश्चित
    मान काम वेदी को अर्पित।।

प्रीति स्पर्श से निपट अपरिचित
भाव मूल्य के प्रति आशंकित
केवल
    केवल काम स्पर्श प्रति जागत।।
भर आया अंतर
        करुणा से विमथित।

ओ शोभा सर की मरालियो
    तुम्हें सौंपता मानवता को
        म—मखीरत के स्तर पर।
        बलि पशु मात्र न बलि यन की
        बनो मानवी भास्वर।

        खोलो रुद्ध हृदय वातायन
        स्वर्ग किरण आए नूपुर छन।
        मग्ना मरी बन मर्रे प्राण मन
        भाव-स्पर्श कर मन उर ग्रहण —
            जड़ निषेध का पाहन।

            अंतर शो चिर वारि सरोवर
                प्रीति-स्म का गिन घर।

सुदर तन,
सुदर हो जीवन!

हृदय प्रीति का स्फटिक-मुकुर,
मन आत्मा का सित वाहन!

यह साधना धरा जीवन की
कवि करता आवाहन!

शुभ्र प्रेम ही मानव जीवन
हृदय पुष्प सित करो समपण—
ईश्वर करे धरा पर विचरण
म कदम हो पावन!

तन न रहो तुम,
त्वच न रहो तुम,
शोभा के छिलके के भीतर
भावामृत का हो रस सागर!
फूल देह में
फले स्नेह फल,
इसमें ही भू मगल!

(इकतालीस)

ये प्रणयी जन
छिपे कामना-कुंजों में घन
कौन रस कथा कहते गोपन
भाव व्यथा सहते मन ही मन!

देश काल से ऊपर उठ कर
अपने ही पर निर्भर
क्या ये अभिनव स्वर्ग-सृष्टि
रचते उर भीतर?—
स्वप्नों की धर नींव मनोहर!

ध्यान कभी आता कोई जन
थे चुप हम
जाने में बातें करते तल्लीन!

फिर दमन अपलक-दृग मुग्ध
मन कथा सुनने को [illegible]—
चिड़ियाँ पास फुदक कर आना

चुक् चुक्,
    इनका ध्यान बटाती,
गूढ़ भेद कुछ समझ न पाती।

जोड़ों में बँट ये प्रणयी जन
क्या बातें करते तन्मय मन?
काल,
    उन्हें संचित कर प्रतिक्षण
मानव मन का गहन अध्ययन
करते यदि तुम,—
    तो किस कारण?

क्या चुन चुन
    नव यौवन उर के रस मरंद कण
विधि नूतन
    सौंदर्य सृष्टि गठन को उन्मन?
मंद मुसकुराते तुम!—
    हिल अनुभूति वृद्ध शिर
इंगित करता हो—
    कुछ भी तो अभी नहीं स्थिर!

हाय, देखता मैं विषण्ण मन,
    गोपन बातों में अब वह
        न रहा आकर्षण!!
    कहीं खो गया
        मुग्ध क्षणों का भी सम्मोहन!

देव, मर गई पद-नत प्रेमा,—
आँख उठा कर
देख न पाती वह मरा मुख—
बंधन दुष्कर।

भाव पंगु मन
काट दिए किसने उसके पर?
अब न मुक्त उड़ सकता उर
छू स्वर्ग दिगंतर।।

क्यों न प्रेम का रश्मि-स्पर्श
नव प्रणयी जन को
काल्प उठा पाया
रम उवर आकाश में?
जहाँ उच्च वायुएँ
प्रजागर रखती मन को?

क्या न भावना-स्वर्गों की
सुषमा में वंचित
इन्द्र धनुष प्रेम
स्वप्न-नीड़ जग
करन निर्मित
नश्वर स्थिता उमप र्गी
तन मन बासा में,
आश्वासित करता जा
नूतन मन जन का।

स्वप्न संपदा,
मुग्ध भाव ऐश्वर्य प्रहर्षित,
नव रस संवेदना,
सृजन प्रेरणा अपरिमित
किसका पा आघात
हो उठी छिन्न भिन्न, खंडित,
भू-लुंठित!

अह, सांप्रत विकास क्रम सीमा!
आँख मिचौनी खेल
दिव्य अंतर प्रकाश से
आँख मूँद ली उसने
रज-अँगुलियाँ ने धर,
झाँक देह की धूलि दृष्टि में
भू पर स्वर्ग सृजन करने की
क्षमता ली हर!!

दृष्टि अंध, वह बंदी अब
तन की कारा में
हृदय भ्रष्ट हो
बहता जग की
राग द्वेष पंकिल धारा में!

देह मोह ने, काम द्रोह ने
निर्मित किया गगन-पंछी हित
स्वर्णिम पिंजर
सदाचार की, नीति प्रीति की
स्वच्छ-तृण तीली
सँजो मनोहर!

प्राण अनुवर
बाहर लोक लाज से मर मर
भू विपाद के दाने चुगता
वह रस कातर।

शासक से वन शासित श्री हत
छाया सा कंपित वह पद नत
मुक्त तत्व स बद्ध वस्तु बन
लघु ससार जोडने मे रत।

उच्च सत्य आरोहो से गिर
अवगुठित मुख लज्जा नत सिर
जीवन का करता कृतघ्न श्रम
बुन अपन बाहर भीतर भ्रम —
भूल जगत-जीवन विकास क्रम।

आ चिर अतमुक्त
कहा तक बध रहोग
जड बधन में?
य स्वर्णिम ही नही गठन में।

क्या विद्रोह न शक्ति तुम्हारी?
जिस पर ईश्वर भी बलिहारी। —
तोडा मोह शृखला भारी
उठा जगा चित शक्ति दुधारा। —
विजय तुम्हारी।

प्रेम भले वन गया आज हो
मोह द्रोह तम काम क्लेश भ्रम,
राग द्वेष, भय सशय,—

देखो,
नयी उषाएँ लाती
नव जीवन अरुणोदय!

निज अजेय पखो से फिर
स्वर्गिक उडान भर
रस क्षितिजो का
भाव विभव नव
उद्घाटित कर—

बरसाओ नर नारी उर में
स्वर्गिक स्वप्नो का सम्मोहन
उपकृत करो धरा रज प्रागण,—

प्रीति मुक्त हो विचरे भू पर
सृजन स्वप्न रत हो जन अतर—
देह न हो जड बधन!

(बयालीस)

माता पिता न आना दते?
मन ही मन भय-संशय सेते?

कहते तुम मृदु कली
जगत कटु काँटों का मग,
सोच समझ कर
अग्नि पथ पर
रखना होगा पग।

केन्द्र व्यक्ति ही,
विश्व भले हो
सत्य की परिधि
अणु में ही ब्रह्माण्ड
देखना समय—
जो विधि।

परंपरा की
स्वर्ण शृंखला में
जन गामिन

सत्य नही सब
जो कि आधुनिक
होता भासित।

"प्रेम?
मूल्य देना होता
उसको सामाजिक,
मर्यादा तट
लाघे क्षण भावुकता—
तो धिक्।"

तुम मुझसे पूछती?—
रिक्त यह चर्वित चवण,
भाव मुक्ति ही मुक्ति
शेष रज तन तम बधन।

पिंजर बद्ध रहें स्त्री नर?
यह भी क्या जीवन?
पिजर भी तन के तण का।—
बदी आत्मा मन।।

परपरा?
यह उसका
मध्य युगी रूपातर,
अतिक्रम कर
सीमा अतीत की
बढता नित नर।

मूल्य चेतना का करती
स्थितियाँ निर्धारित,

मानव TT जीवन मन
जिनसे होता शासित!

भू जीवन स्थितिया का
करना नया सगठन,—
नया मूल्य केंद्रिक हो
सामाजिक जन-जीवन!

नयी लोक मर्यादा
इसस होगी विकसित
दह-मूल्य में नही रहगी
प्रेमा सीमित!

काम द्वप?
यह निम्न योनि की
पशु प्रवत्ति भर
इसम दग्ध रहेंग
रस प्रबुद्ध नारी नर?
जम प्रेम ने अभी
लिया ही कहा धरा पर?
उसक हित
तप त्याग अपेक्षित —
वह भू ईश्वर!

घणा द्वप ग्लानि
उसके हित
मिन स्वर्गिक वर
तुच्छ देह मन धूलि
प्रेम पर करा निछावर!

मंदिर हो तन
प्रेम दीप्त जो हो अभ्यंतर,
स्वर्ग धरा पर विचरे,
साधक जीवन का घर।

निकलो कूप तमस से
जीवन प्रभु प्रकाश वर,
खुला स्वर्ग शिखरों से पर
आत्मा का अंबर।

देह भीति खो
मनुज प्रीति में बँध नारी नर
श्री शोभा मंगल का
सौध उठा जन भू पर—

बरसाएँगे भावों का
ऐश्वर्य अनश्वर,
हटा देह तम पटल
हृदय के द्वार खोल कर।

कूप बनेगा
सित प्रतीति रस विस्तृत
सागर,—
ग्रंथि मुक्त,
सहृदय होंगे
स्त्री पुरुष परस्पर।

(तैंतालीस)

आओ आओ
मृदु मुख मुकुलों से मुसकाओ!
नव जीवन शिशुओ
जन भू रज
पद चिह्नित कर जाओ!

स्वप्नों के से चरण चिह्न स्मित
भू उर शूल करेंगे कुसुमित
धरती की
जड़ता को गति दे
देश काल में छाओ!

आओ आओ
नया हास बरसाओ!
निश्छल स्मिति का
स्वर्ग प्रकाश लुटाओ!

नव अधरों से रंग विमल्यित
जन प्रांगण पतझर हो मुकुलित,
स्वर्ण अंकुरित हो नव तन मन,—
धरा विषाद मिटाओ!

आओ, आओ
कोकिल चातक के सँग गाओ!

आरम नील
स्मित निर्मल चितवन,
कैसा लगता
प्रिय जग प्रतिक्षण?

लौट रही मेरी शैशव स्मृति—
पा अग जग का सद्य परिचय
उर अवाक करता मित विस्मय!
तितली, जुगनू,
फूल, चाँद, उडु
मन में क्या कुछ भरते आशय!

चिड़ियों के स्वर, रंगों के पर—
सब कुछ कैसा लगता सुंदर!
कितना सम्मोहन था भीतर
कितना आकर्षण था बाहर!

बादल, इंद्रधनुष, गिरि निर्झर,
इच्छाओं के मुक्त दिगंतर—
कौन वस्तु थी वह दृग गोचर
जो तत्क्षण न हृदय लेती हर!

आओ आओ
वही दृष्टि फिर लौटा लाओ!
जग को मन से नया बनाओ!
नहीं तुम्हारे योग्य अभी जग,—
बच्चो क्रम विकास का यह मग!
जीर्ण रूढ़ियों का जड़ पंजर
बंदी कर न तुम्हें—दिखा डर!
इससे पहिले ही—रह तत्पर
लोहा लेते रहो निरंतर!

शिशु भविष्य के तुम्हीं हो पिता
तरुण बनोगे बाल्य क्षण बिता!—
नयी पीढ़ियों को निज यौवन
वृद्ध जगत को करना अर्पण!—
वत्स तुम्हारा ही तो शोणित
स्वर्ग अग्नि-लौ से तप दीपित!
मरणोन्मुख जग—प्राण दान दो
मित्र पौरुष को प्रथम स्थान दो!

याग करो जन मंगल के हित—
नव भविष्य हो तुममें उपहृत!
नयी पीढ़ियाँ अब जो आएँ
स्वर्ग समान धरा को पाएँ!
शोभा करे धरा पर जीवित
अंत मुग्ध से हो उर दीपित!
मानव शांति हो जग में स्थापित
मनुज प्रेम में जीवन जागित!

आओ, आओ
जन अभिनदन पाओ!
तुम नव जीवन प्रतिनिधि
भू को उच्च उठाओ!

ओ अजेय,
चैतन्य स्फुलिंग,
धरा ही क्या,
तुम स्वर्ग लोक में भी
न समाओ!

(चौवालीस)

मुक्त प्रकृति क प्रागण!
बहुत दिना में मिल
तुम्हार गौरव दशन!

बचपन में हिरना सा चढ
इन गिरि शिखरा पर
खेला हूँ—प्रिय तलहटिया में
लोट पोट भर!

कूद उच्च शृगा म
गाते फनिल   निझर
मुग्ध वहा न जान—
उर वीणा झकृत कर!

उतर बादला म गिरि भू पर
इद्रधनुष   मिलन
स्वग धरा को
बाहा में भरते मनरजित!

ताली दे-दे कर
 गिरि बालाएँ आनंदित
फहराती निज
 सुरंग चूनरें—विस्मय पुलकित!

मरकत छायाओं के वन
 अहरह भर मर्मर
उद्वेलित रहते,
 जलनिधि से कंपित थर् थर्—

चलता कंधों पर
 किशोर कौतुकी समीरण
उछल सिंह शावक सा
 शिखर शिखर पर प्रतिक्षण!

ऊँची ढालों के नीचे
 जल-स्रोत अगोचर
रेंगा करते साँपों से
 फुफकार निरंतर!

मन अबाक रखतीं
 चुप्पी साधे चट्टानें
खड़ी सामने निर्भय
 चौड़ा सीना तानें!

शृंग लाँघने की
 रहती थी भूख डगों को,
पर पार करते
 सर्पों से जिह्म मगों को!

दवदारु के हरे शिखर
रहते रोमांचित,
सतत सिसकते
चीडा के सघी वन मथित।

रग पख भात
मनाल डफिया—वहु हिम खग
मन में बसता
हिरन शशक—पशु पक्षी प्रिय जग।

ऊषा सध्या स
विचित्र था मन का परिचय
एक प्रेयसी सी थी
इतर सखी सी सहृदय।

एक लाज में लिपटी
उर करती छवि तन्मय,
साथ टहलती साझ
सुख घर छोड—सन्याशय।

अमरा के एश्वय लोक सा
था निसशय—
कौमानी का शुभ्र
स्वग सिरमौर हिमालय।

आत्मा की शोभा गरिमा ही
मूत रूप धर
रोमांचित रखती—
अपरूप स्वर्गिक विस्मय भर।

नील विहगम की उडान सा
नीरव अंबर
मन को स्वप्निल पंखों की
छाया में लेकर—

मौन हिमालय की सन्निधि में
कर अंतर्मुख
आत्मा का साक्षात्
कराता, उर कर उन्मुख।

इधर उधर फिर अचल में,
सागर भूतल में,
नीड़ों में छिपते खग,—
मैं प्रिय गिरि अंचल में।

रमता मन वाङ्मय, संस्कृति
श्रुति दर्शन मग में—
पर वह तन्मय होता
प्रकृति, तुम्हारे जग में।

इन आरोहों पर बीते
कितने चिंतन-क्षण,
कितनी गहरी छायाओं से
घिरे धूम घन।

रजत अनिल पंखों पर उड़
भावुक किशोर मन
टकराता फिर विद्युत
चट्टानों से तत्क्षण।

जूझ धरा रज के तम से
मन का प्रकाश कण
क्या पा क्या दे सका—
थाहने का क्या साधन?

सौ सौ मनुजो का जीवन
होता कवि जीवन
उसके सुख दुख, हानि लाभ, ?—
सभव न परिगणन!

पीता वह भू मन के
राग द्वेष के दशन,
उसके सृजन स्वप्न सवदन!—
ब्रह्मा के धन!

स्वण भग मा गूज
शुभ्र एकांत हृदय में
अतर को कर लीन
लोक हित मधु सचय में—
लाद गया वह, निबल पीठ पर
म जीवन दुख—
विप ज्वाला पी
बरसाते उर मध अमृत सुख!

प्रभु, भू पर हो
भौतिक आत्मिक जीवन मगल —
मिनगिरि तेरे चरणो पर
अर्पित सुख दुख फल!

(पैंतालीस)

गिरि भृगो पर भाती आती
ऊषा सन्याए दिङ् निस्वर,
नील गगन से झर झर पडता
स्वर्णिम किरणो का स्मित निझर।

उषा स्वप्न शोभा-ज्वाला से
रँग सा देती विश्व दिगतर,
एक अनिवचनीय शाति में
भाव मग्न हो उठता अतर।

खग ही गाते? फल पात तण
रजकण भी गाते इगित कर
मुझे सुनाइ पडते उनके
दिक् प्रसन, थपित, नीरव स्वर।

लिपट समीर लता तरु तृण से
पुष्पा की मधु रज पी सुरभित,
स्वग श्वास सा बहता शीतल
प्रति रजकण को कर उन्मेपित।

भूतों का ऐश्वर्य
जीव जग को भी
करता तन्मय हर्षित,
गिरि शिखरों का नव प्रभात
हरता मन
सद्य शोभा प्रहसित!

सांझ मुझे पर, अधिक सुहाती
छाई निर्जन गिरि आंगन पर
स्वप्नों में सी डूबी तन्मय
शन उतरती वह श्री सुंदर!

स्वर्ण-नील गैरिक छाया में
भाव निमज्जित हो गिरि प्रांतर
ध्यानावस्थित सा लगता—
अपलक निश्चल अंतर्मुख भास्वर!

रजत-वारि दिन का उडुल्कर
रक्तिम ताम्र कलश सा भास्वर
ज्योति रिक्त अब ऊन डूब सा
करता पश्चिम सागर तट पर!

प्रदक्षिणा करता पृथ्वी की
प्रतिदिन उदय अस्त हो दिनकर
तथ्य यही विपरीत सत्य हो—
जन मन बाह्य-बोध पर निर्भर!

गिरि टालो पर ढल्ती
छायाएँ, दिगत लवी काया वन,
भेडो की घटी वजती
धूमिल तलहटियो से प्रतिक्षण छन।

वहिर्विभवमय अत स्मित ऊपा—
सक्रिय तन-मन, जीवन क्षण,
अतर्दृष्टिमयी प्रौढा सध्या
मन करता मौन समपण।

शन अस्त आदिम-तम म जग,
उदित हुआ वह जिससे निश्चित,
ज्योति-छत्र सा ऊपर अवर—
अचल छाया मे शिशु निद्रित।

साय प्रात, प्राण, तुम्हारे ही
श्री स्वर्णिम स्वर्गिक तोरण,
रजत काल करतल पर
भव गति स्थिति ल्य नतन की
तुम कारण।

(छियालीस)

कैसे कहूँ
धरा पर तुमको
प्राण प्रतिष्ठित
जहाँ प्रीति अभिशाप
काम सख
बहुमुख स्वीकृत।

सखि, अल्प मर्म स्पर्श
भाव प्रतिमा बन जीवित
नव नव श्री शोभा में
मन को
रखता विस्मित।

अपने ही को छू
तुम हो उठती
रूपायित
सूक्ष्म हृदय से प्राण
गूढ़ रति-स्मृति में
पुलकित।

स्वर्ग रश्मि हे,
चुना स्वयं ही
तुमने कर्दम प्रांगण,
फूलों के पग
शूलों के मग में
हँस करते विचरण।

अनघ विद्ध रह
कल्मष द्रोणी
करती तुम नित पावन,
रोमांचित रज
चरण स्पर्श से
बनती मरकत मणि घन।

प्रेम नाम की
प्रतिक्रिया ही
उपजाती अविदित भय,
सुधा गरल का,
गरल सुधा का
अब पर्याय, न संशय।

तामस मदिरा पी
युग - मन
करने को भू-जीवन क्षय,
दिव्य दृष्टि से
देख रहा जय
काल पुनः बन संजय।

जो कलक तम मोचक
उसस होता
जगत कलंकित,
कस कर
धरा पर, श्रद्धे
उर की ज्योति प्रतिष्ठित!

पौ फटने से पहिले

(सैंतालीस)

चादनी सी देह
बाहो में ममेटे
सोचता मन भाव कातर—
कौन सूक्ष्म सगध
करती प्राण त मय—
राग कर से छू निरतर।

खुल रहे मन के दगो मे
स्वप्न पखी
नयी शोभा के दिगतर,
धरा से उठ चरण मन के
लौट आते,
पार कर रम मुक्त अबर।

प्राण,
कैसे मूत होगी
धरा रज में
स्वग सुपमा,
भाव रस अतिमा मनोहर।

किस अहता दश से
जाने प्रवचित
भाव कुठित, मोह मूर्छित
मूढ स्त्री नर!

स्वाभिमान भले महत हो
वतमान विकास स्थिति म
कूप जल मडक वत ही
आत्म रति सकीण अतर!—
प्रीति श्वासा सष्टि की—
सित भाव रस अपित हृदय ही
पार कर पाते
अनास्था उदधि दुस्तर!

ज्योति को घातक तमिस्र
तमिस्र को ही
मानता जग ज्योति भास्वर—
मोह रज दुगध पर ही
काम दग्ध
दरिद्र नर-नारी निछावर!

चान्नी मी
तुम हृदय में हो गमाइ,
स्वग की मिन गध
बन्नी भाव जग में
मुवन नर भ्रर

अमिट आस्था मुझे—
ज्ञान विकास क्रम में
सूक्ष्म की होगी विजय
मा, स्थूल पर,
तुम मनुज को दोगी अभय,
दे ज्योति प्रीति प्रतीति का वर।

(अडतालीस)

क्या कहूँ?
क्या गोपन!
सुन व्यथा जगत की होगी!
जो अमूल्य मणि
उस तुच्छ
जग के मूल्यों पर लोगी?

बिना कहे ही
भाव-गंध गो
फैल गई अग जग में
सूक्ष्म सुरभि उठ
समा गई
मू जीवन की रग रग में!

नार नहा
तरेर रह
सुनकर मी मी मू-गायन,

कही खोल दू
म न हृदय में
स्वग ज्योति वातायन!

और कही
सचमुच उचार दू
मुह से ढाइ अक्षर,
कोलाहल
मच जाय,—
लजाए अणु विस्फोट भयकर!

लोग नही
विश्वास करेंगे,—
सत उठ गया मनो से
काली घणा
बरसती भू पर
सशय धूम घना से!

हीरक नीलम सक
चितकबरा
साप बन गया भीपण,
मणि अगार,
अमृत विप,—
कुठित काम-अध जन भू मन!

मात्र काम
भावाथ प्रेम का,
प्रहर ह्रास का निश्चय,

(अडतालीस)

कमे कहूँ ?
    कया गोपन !
        मुन व्यथा जगत को होगी !
जो अमूल्य मणि
        उस तुच्छ
        जग के मूल्या पर लोगी ?

विना कहे ही
        भाव-गध लो
        फल गइ अग जग में
मम्म मुरभि उड
    ममा गइ
        मू जीवन की रग रग में !

                    तार नही,
                        तरर रहे
                            मुनका मो मो मू-गावन

नही खोल दू
म न हृदय मे
स्वग ज्योति वातायन !

और नही
सचमुच उचार दू
मुह से ढाइ अक्षर,
कोलाहल
मच जाय,—
लजाए अणु विस्फोट भयकर !

लोग नही
विश्वास करेगे,—
सत उठ गया मनो से,
काली घणा
बरसती भू पर
सशय धूम घनो से !

हीरक नीलम सक
चितकबरा
साप बन गया भीषण,
मणि अगार,
अमत विष,—
कुठित काम अध जन भू मन !

मात्र काम
भावाथ प्रेम का,
प्रहर ह्रास का निश्चय,

मोह निशा
बीतगी! —
होगी हृदय ज्योति ही की जय!

मध्ययुगी
तम कूप वत्ति यह,
इसमें मुझ न सशय,
प्रीति रश्मि को
विश्व सचरण बन
हरना जन भू भय!

हृदय गुणा स
हीन व्यक्ति ही
भ विकास अवरोधक
प्रीति ज्योति स
रिक्त काम तम
विश्व ह्रास का बोधक!

उद्वेलित हो भल
राग यमुना का
सागर-सचय
मन कान्ति पण
पुन नाचना
नव युग को निसशय!

स्वप्न सखी,
हम मनुज हृदय को
प्रेम निवास बनाएँ,
जीवन दाहक
काम अग्नि में
सजन मुक्ति जन पाएँ!

(उनचास)

आज खुल गए हृदय द्वार,
सखि, उमडा चित ऐश्वय ज्वार।
एक अनिवचनीय
स्वप्न सौदय भुवन
हो उठा स्फटिक क्षण में साकार।

बदल गया हो जग का आनन,
हिम आरोहो पर फहराते
फाल्गुई स्वर्णाभा केतन,
भू के धूलि कणो में अँगडा
उगते माणिक-अंकुर चेतन।

गूज उठी हा
स्मित मरकत घाटिया
हँसे नीरस जीवन-क्षण।
रुद्ध खुल पडे हृदय-द्वार
हर उर का मोहित भार।

प्राणों की शोभा का
चंपक-गौर वक्ष जो
मेरी दृष्टि
लुभाए रहता बरबस,
उस पर से
अब रूपमोह का
सरक गया
सहसा अंचल खस —

सूक्ष्म अनावृत सुषमा का
नव अंतरिक्ष अब
उर की आशा में उद्घाटित,
छिन्न भिन्न
प्रेरणा समीरण से
ज्ञान घन
मनोबाष्प सब हुए पराजित!

शुभ्र चेतना का मुक्ता घट
झुक उड़ेलता हीरक आभा
प्राणों की घाटी में उतरी
भाव गर्त में छिपी द्वाभा!—
मुग्ध आत्मा का प्रसार!

वह प्रेम की तन्मयता
[illegible]
अमित तुम्हारा [illegible]
गीत आत्म-पर बाध से पर
[illegible]
चेतना गाढ़ में डूब जाता मन—

मति न अघाती
                पी उसके
    चित् रस सवेदन!

इसी बोध के
    नव आस्ये,

    ला प्रीति-स्पश क्षण

    धरा पीठ पर
        करो अवतरण!—
            उपकृत हो ससार!

(पचास)

कैसे चित्र शोभा
छायांकित करूँ
लोक दर्पण में?—
थी सुषमा की
तन्मय प्रतिमा
जन भू जीवन मन में।

बने उरोज शिखर ही
अब युग-बोध के शिखर
युग नितंब गोगाध
योनि आगन ही
जीवन अजिर—
लोक-मन दुस्तर।

बिखर गए गत मनुज हृदय की
दबी सपन मान्यर
नया हृदय होगा उदय,
नव प्रीति-स्वप्न स्पन्दन भर।

निखर रही दग सम्मुख तुम
सौदय शिखा सी निस्वर,
काम शलभ छवि दग्ध,
प्रीति लौ से दीपित अब अतर!

खुल्त अक्षय सूक्ष्म चेतना भुवन
चकित अतर मे
दह गोध-क्षण लीन
प्रीति रति के अकूल सागर में!

लोट रहा आनद स्वग
सित श्री शोभा चरणा पर,
जो उठती भू-रज पद छूकर
हँस सुमना मे सुदर!

कसे दिखे अगोचर सुषमा
शब्दो के दपण में?—
भाव ग्रहण के लिए
सूक्ष्म अनुभति
चाहिए मन में!

(पचास)

कैसे चित्रित शोभा
छायांकित करूँ
लोक दर्पण में?—
श्री सुषमा की
तन्मय प्रतिमा
जन भू जीवन मन में!

बने उरोज शिखर ही
अब युग-बोध के शिखर
युग नितंब गाम्भीर्य,
योनि आँगन ही
जीवन अजिर—
भाव मन दुस्तर!

विस्मृत गत युग मनुज हृदय की
देवी सपने भास्वर
नया हृदय हो रहा उदय,
नव प्रीति-स्वप्न स्पन्दन भर!

निखर रही दृग् सम्मुख तुम
सौंदर्य शिखा सी निःस्वर,
काम शलभ छवि-दग्ध,
प्रीति लौ से दीपित अब अंतर!

खुल्त अक्षय सूक्ष्म चेतना भुवन
चकित अंतर में,
देह बोध-क्षण लीन
प्रीति रति के अकूल सागर में!

लोट रहा आनंद स्वर्ग
सित श्री शोभा चरणों पर,
जो उठती भू रज पद छूकर
हँस सुमनों में सुंदर!

कैसे दिखे अगोचर सुषमा
शब्दों के दर्पण में?—
भाव ग्रहण के लिए
सूक्ष्म अनुभूति
चाहिए मन में!

(छक्यावन)

विसने यहा कल्पित
  इद्रिय जीवन प्रागण ?—
दह चतना पावक ही की
  जीवित सित कण !

स्वग विम्ब ही स उपजा
  भ जीवन निश्चय,
रणु-पात्र में भरा
  वही पीयूष असनाय !

अन भी भ पर मँडराती
  न्वि सुपमा छाया
स्वप्न-मस उडनी अनान
  मनोमय माया !

गध प्रीति मस की
  मांसा में बमनी अगय
आत्मा का मिन सौरम,—
  अनर स्मनि-मस तन्मय !

अब भी दे
मदार लता - बाँह आलिंगन
भाव यौवना
अप्सरियाँ सी हरती तन मन!

स्वर्गंगा लहरों पर उठ गिर
स्वर्ण कलश स्मित
प्राण चेतना सरिता - जल पर
राग उच्छ्वसित—

राज मरालों से
उड़ान भरते मानस में,
इड़ा कल्पना का
अनिंद्य श्री सुषमा रस में!

देव दनुज पशु
हुए मनुज में पूर्ण समन्वित
मानव इंद्रिय-जीवन प्रिय,
संग ही इंद्रियजित!

स्वर्ग लते, कहता यह कौन
नहीं तुम भू पर?
उतर प्रेरणा पंखों पर
पुलकित कर अंतर

रज तन को छू करती तुम
रस चेतन, पावन
वाहित कर चेतना गगन में
जड़ को तत्क्षण!

काम नही रज तन गुण—
स्वग सप्टि का कारण,
तुम उसको निज स्वण योनि में
करती धारण!

सजन-स्पश स जग उसके
जड बनते चेतन
वह आत्मा का पावक
पावन जिससे मद तन!

भाव-युवति हे
तुम आत्मा की रस प्रकाश,
ह्लादिनी तडित घन
पावक शक्ति—निखरता जिसम
तप मन काचन!

जड चेतन से परे,
प्रेम-परिणीत—शाश्वत
श्री सुषमा मगल्मयि—
उर पद पद्मा पर रत!

(बावन)

क्षुधा काम को
　　मानवीय गौरव दो भू पर,
रज कदम में,
　　कृमि से डूबे रहें न स्त्री-नर।

ईश्वरीय सचरण प्रेम का
　　हो दिग विस्तृत,
क्षुधा काम की पीठ
　　धरा हो रस-मर्यादित।

कवि उर मानव प्रीति स्वाति का
　　सित रस चातक,
लोक भावना की
　　विकास पद्धति का स्नातक।

हृत प्रतीक स्त्री,
　　मनुज हृदय का वह आराधक,
आत्मा मन ही नहीं,
　　धरा-जीवन का साधक।

भाव प्रियाएँ कवि की
सब जन भू की नारी,
कवि मन जीवन - शोभा
मंगल का अधिकारी!

प्रेमा की सित रश्मि
संयमित करे लोक मन
लघु कुटुंब से महत
मनुज जग का आकर्षण!

हँसते फूल चहकते खग
अलि भरते गुंजन
सृजन काम रस-तन्मय हो
स्त्री-नर उर-स्पंदन!

स्वप्नों के शोणित से
मन शिरा हों प्रेरित
शोभा हो स्त्री पुरुष प्रेम
रज राग प्रहर्षित!

भू पर विचर
मानव उर में बसे ईश्वर
मुक्त प्रेम के पग धर
जन मन को संस्कृत कर!

क्षुधा काम भी रहें
कुंठा में लघु सीमित,
स्नेह प्रीति में
मानवता का सुख हो स्थापित!

म जीवन हो
प्रीति चद्र चुंबित
रस सागर,
उन्नत शोभा ज्वार मथित
अतर्मुख भास्वर !

मनुज हृदय ही हो
मानव का भाव दीप्त घर,
अतर्वैभव में समृद्ध,
वहिरतर सुदर !

वधू तुम्हे रचना भ गह
तन मन कर अर्पित,
भू अघ म सन कर ही
होगी तुम अकलकित !

सित पवित्रता वह्नि
हृदय की ज्योति आतरिक
धिक उनको,
जो उसको
त्वक सीमित रखते—धिक !

(तिरपन)

तुम्हें पक मे उठा प्रिय
मन हृदय स्नग म
करता स्थापित!
कौन रश्मि
जाने उर को छू
दिव्य रूप करती उद्घाटित!

स्वार्थ क्रूर स्वर्णिम जग पिंजर
बन्दी तुम, जीवन मन जजर,
पग पग पर
शंकित निज प्रति उर,
रूढ़ि रीति तम से
चिर शासित!

मगल धान की सी बाली तुम
रूपमयि श्री शोभाशाली तुम
निठुर क्षुधातुर वन्य पशु पर
नाव ज्ना
नव पशा ताडित!

पशु बल का भू पर सघषण,
सस्कृत हो नर—दूर अभी क्षण,
अधकार चलता धरती पर
जग जीवन
लगता अभिशापित।

देख रहा म, भू निश्चेतन
भरता जो फूत्कार उठा फन,
सुन वशी ध्वनि अतरिक्ष म
सजन नत्य रत,
प्रणत, पराजित।

पौ फटने का पूव प्रहर यह
गहराता अतर तम रह रह,
हृदय क्षितिज मे उदित हो रही
तुम उषा सी
अप्रत्याशित।

काम दग्ध न रहेगा अतर
स्वग प्रीति विचरेगी भूपर
इश्वर हो रस मूत सष्टि म—
यह विकास क्रम म
निर्धारित।

तुम्ही सूक्ष्म आत्मा जीवन की
हृदय ज्योति श्रद्धा नत मन की
भाव मुक्ति तुम,
भू पर जीवन मगल स्वग
करो रूपायित।

(पचपन)

सृजन व्यथा
  जगती रहती!
तुम्हीं हृदय बन
  विश्व वेदना दंशन
    प्रतिक्षण   सहती!

मनुज हृदय अवरुद्ध
    युगों से संघर्षण रत
व्यक्ति वर्ग मन वह
    आत्मा का स्वर्णिम अभिमत!
अन्तर्भाग
    भाव प्रवण कवि का उर रहता!

सफल हो भू जीवन कुसुमित
विश्व सभ्यता संस्कृति विकसित
जन मानस संगत प्रणय का मान
  हृदय भी न निरुद्ध—
मनुज ज्योति से वंचित!—
  कवि की रस भित प्रज्ञा कहती!

ओ अदम्य, अविजेय शक्ति,
तुम भूमि-कपवत्
भाव जगत कर मथित,
जीवन में होगी अभिव्यजित,
भू विरोध कर प्रशमित।
गुह्य, प्रचड, अबाध वेग से
तुम अतर मे बहती।

भू जीवन प्रतिनिधि कवि-अतर,
तुम हृत तन्त्री रस झकृत कर
रचती नव चतय-स्वग
छल स्वर-सगति में महती।

देख रहा कल्पना दष्टि से
अतर रस चतय वृष्टि से
मनुज अहता रचित सष्टि को
रूढि अध बाधाएँ बहती।

तुम विनाश के भीतर सजन
करती भर रस चेतन गजन,
जग के उलझे ताने बाने
फिर निज कर में गहती।

(छप्पन)

तुम इतनी हो निकट हृदय के
भूल तुम्हें जाता मन
प्राण इसी से राग द्वेष का
जीवन बनता प्रांगण।

चिद् दर्पण सी तुम चिर उज्वल
जिसमें अपना ही मुख
लख मनुज
सहता भव सुख दुख —
प्रबल आत्म सम्मोहन।

श्लक्ष्ण सूक्ष्मता ही में अपनी
तुम खोई सी रहती
व्याप्त चतुर्दिक —
मात्र तुम्हीं सब
जिसको मति जग कहती।

ओ अनाम सौरभ,
उर अनुभव करता
मौन उपस्थिति,
तुम्हें बाँध सकता न
स्वयं बँध जाता
पावन उपस्थिति!

रति, अरूप सुषमा गरिमा से
भर जाता मन अंतर—
गोचर भाषा में जिसका
सम्भव प्ररूप गहनतर!

तुम्हीं हृदय स्पंदन बन गातीं
प्रति रस प्लावित क्षण में
सृजन चेतना बन
स्वप्नों का रूप सँजोती मन में!

भावों की जिन स्वर्ण-श्रेणि पर
करता उर आरोहण
वे पग होते, प्राण तुम्हारे,
रहस-श्रेणि भी गोपन!

तुम होती
ब्रह्मांड बोध
हो उठता करामलकवत,
तुम्हीं सत्य हो,
रूप-मुकुर भी
वस्तु बिम्ब भी ज्ञान गत!

रमे,
निकट भी दूर,
दूर भी निकट,
अगोचर प्रतिक्षण
गोचर प्रतिक्षण में तुम—
निश्चय अवचनीय
सच्चिद् घन!

(सत्तावन)

ज्ञात मुझे
विद्वेष सिन्धु क्या
जन भू मानस में उद्वेलित!—
युग मन के
चैतन्य शिखर पर
शांति ज्योति तुम हुए अवतरित!

आंदोलित अब ह्रास निशा तम
छाया उर में भय, संशय, भ्रम
यह निश्चय नव जीवन उपक्रम—
अघटित होना घटित—
न जल्पित!

जग का जड़ अतीत मरणोन्मुख,
देख रहा कवि उर अंतर्मुख,—
राग द्वेष, आशा भय सुख दुख
प्रगति चिह्न—
भू पथ पर अंकित!

पथराया गत जन भू का मन
जिसके मृत प्रतीक द्वेषी जन —
करता नव चैतन्य संक्रमण
एक वृत्त
संस्कृति का अवसित!

जिन्हें मिला महिमे प्रकाश वर
सृजन-स्वप्न रत उनका अंतर —
मृत् विद्वेष घृणा तम के पार
जीवन मंगल प्रति
वे अर्पित!

कांटों ही का मुकुट पहन कर
स्वर्ग दूत आते जन भू पर
सिंधु विश्व-संघर्षण का तर
भू जीवन का
करते उपकृत!

जन प्रकाश-तम प्रतिनिधि भू जन
युद्ध-क्षेत्र युग मन का प्रांगण,
विस्मित होता विश्व संतरण
विजय ज्योति की
तम पर निश्चित!

(अट्ठावन)

युग नग के मम्मुख दारण रण।
गग चेतना मे रस प्रेरित
    उद्वेलित जन भ उपचेतन।

उतर रही रस ज्योति धरा पर
नन स्वप्ना से उवर अतर,
मज्जित करता भू जीवन तट
    नव श्री सुपमा का सित प्लावन।

वमन कर रहा भू निश्चेतन
घट्ट कुठा यदम तम प्रतिक्षण,
भय सगय मे मर्दित भू-मन
    क्रुद्ध उगलता विप पावक घण।

हृदय प्रकाग उधर रम भास्वर,
इधर देह रज तम का सागर
धाम भीति मे भाव भ्रांति मे
    छिडता जब नीपण सघपण।

नही पूणता प्राज्ञ कल्पना
स्वग स्वप्न भी रिक्त जल्पना,
प्रीति रश्मि को भात्र मूत हो
जन भू पथ पर करना विचरण।

कभी कूप तम में भय कुठित
हृदय ज्योनि रह सकती गुठित?
श्री गोभा सुख स्वग वनेगा
निश्चय मण्मय जन भू प्रागण।

हिम गिरि ढाला-से सित नि स्वर
स्फाटिक भावा के चिद अवर
जगते—इद्रधनुप स्मति रजित
स्वप्न मुग्ध कर मन क लोचन।

सय मुग्नी ऊपाएँ हँस कर
भाव दीप्त करती उर क स्तर,
रसोमेप मगल प्रहप का
खुल्ता जीवन में वातायन।

(उनसठ)

अंधकार का मुख पहचानें!
यह अनंत मुख शेष नाग
जो धरा स्वर्ग उर में फन ताने!

गात गूढ़ इसका आकर्षण
गहन गोपन रस के बंधन
ढँपता चित प्रकाश का आनन
अगणित इसके ठौर ठिकाने!

निश्चेतन की गुह्य नींव पर
जीवन सौध खड़ा दिव सुंदर,
सिर पर स्वर्ण कलश रवि भास्वर
एक अभिन्न प्रभा तम जानें!

ज्योति-योनि तम मुझे न संशय,
एक ब्रह्म दिन होने को लय,
हँसता नव जीवन अरुणोदय
लगी गुहा धीरे मुसकाने!

नही पूणता प्राज्ञ कल्पना,
स्वग स्वप्न भी रिक्त जल्पना,
प्रीति रश्मि को भाव मूत हो
जन भू पथ पर करना विचरण !

कभी कूप तम में भय कुठित
हृदय ज्योति रह सकती गुठित ?
श्री शोभा सुख स्वग बनेगा
निश्चय मणमय जन भू प्रागण !

हिम गिरि ढाला-स सित नि स्वर
स्फाटिक भावा के चिद अबर
जगते—इद्रधनुप स्मति रजित,
स्वप्न मुग्ध कर मन के लोचन !

सय मुखी ऊपाए हँस कर
भाव दीप्त करती उर के स्तर
रसोमय मगल प्रहप का
खुलता जीवन में वातायन !

(उनसठ)

अधकार का मुख पहचानें !
यह अनत मुख शप नाग
जो धरा स्वग उर में फन ताने !

गात गढ इसका आवपण
गढता गोपन रस के बधन
ढँकना चित प्रकाश का आनन
अगणित इसके ठौर ठिकाने !

निश्चेतन की गुह्य नीव पर
जीवन सौध खडा दिव सुदर
सिर पर स्वण कलश रवि भास्वर
एक अभिन प्रभा तम जानें !

ज्योति-योनि तम, मुझे न सशय,
एक ब्रह्म दिन होने को लय
हँसता नव जीवन अरुणोदय
लगी गुहा धीरे मुसकाने !

तम सोइ आभा नि सन्यय
इसे जगाने का ले निणय—
सजन कला का पाएँ परिचय
खोल सष्टि के तान बान !

इर्ष्या क्रोध कल्ह मद मत्सर
अपकार व अधोमुखी स्तर—
जीवन मूल्या का रत्नाकर
वह निकाम को देता मान !

खोलो ह तन मन के बधन
जग का परिचय पाने नूतन
तम प्रकाश मुग ही का दपण
बिम्बित जिसम विश्व अजान !

भाव प्रीति उपजाती मा भय,
तुम्हें समपित विजय पराजय
निज प्रकाश म करो तमस लय
रस भू पर अग्णोन्य स्नान !

(साठ)

मत अतीत से
    त्रात दृष्टि मन,
        तुम विद्रोह करो क्षण प्रतिक्षण !

गत जीवन का शव मत ढो तुम
दया द्रवित अतर मत रो तुम
    क्या आशा उनसे
        पथराए
    जड अतीत के प्रतिनिधि जो जन !

आत्म सिद्धि हित प्रतिक्षण प्रेरित
नव सवेदन से उर वचित,
    हिम चट्टनो-से तिरते वे
अतल स्वाथ में डवे गोपन !

अधकार के अतर निमम
ये विकीण करते सशय भ्रम,
व्योम लता-से
    छाए बरबस,
        चूस प्राण मन रस सजीवन !

निम्न शक्तिया स सचालित
करते नित सत ध्येय प्रताडित
सावधान हे
मनज रूप में
प्रेत धरा पर करते विचरण।

आओ, नव आस्था प्रति अर्पित
मनुज हृदय का करें सगठित
ज्याति प्रहार
कर जड तम पर
भूमिकप फिर दौड भीषण।

नष्ट भ्रष्ट हो विकृत पुरातन
जाग फिर निद्रित उपचतन
तम पर हो
विजयी प्रकाश कण
यह भावी मानवता का रण।

भाव क्राति हो नव विकास पथ
भरा सजन म यग विनाश रथ
ठुकराओ
तम क पवन का
धरा हृदय में हो प्रकाश-व्रण।

मन जन म मबध न समय
विचरा शांति-मनु स्व अभिनव
स्थापित हो
जीवन मन का—
नव विराम का आया शुभ क्षण।

(इकसठ)

प्राण,
तुमको ही समर्पित
चेतना, मन, कर्म, वाणी,
भावनाएँ कामनाएँ भी
हृदय की—
ध्यान के कृश सूत्र में
सित स्नेह गुफित
तुम्हें ही
सविनय समर्पित !

रूप-श्री, सौंदय प्रतिमाएँ मनोहर
सतत जो करती रहीं
मन को विमोहित,—
नील मृग दृग, चल भृकुटि
नासा सुघर,
सस्मित कपोल,
अधर प्रवाल,
मराल वक्ष,
पुलक-लता सी बाँह कोमल—

तुम्हें करता हृदय
अत स्थित
समर्पित।

मात्र प्रतिकृति ये अविकसित—
सार सत्य तुम्ही अनश्वर
मवल श्री गोभा प्रत्प
प्रक्प की मित—

तरणि, तन्मय भाव गोचर,
तुम्ही म त्य
प्रणत अतर
मौन अनुभव रत निरतर
दगता अब—

तुम्ही हो मवस्व मरी
तक मथित बुद्धि
करती पय मेरी—

निखिल तन मन प्राण
जीवन माय— एकत्रित
तुम्हें करना समर्पित।

स्मा पा नतय का
अम्लित रम-गुजित
मजन रत मुक्त अतर।—

मर ग्मे श्री-मग्म
गामा व ग्गित
हृम्य का आनन्द में भर
निघ-मज्जित।

पीछने से

कि बेकुल मा म
लना अपार विरल
तुम्हारे प्रेम से वंचित।

लौटना ल
मा तुम्हारी ओर,
मन में प्रीति माल का
नदित स्वप्न
तुमको कर समर्पित।

न्य

२५०
३०
२५
४०
५०
६५
४०
११०
४०
१००
८०
३५
६०

तुम्हें करता हृदय
अत स्थित
समर्पित।

मात्र प्रतिकृति ये अविकसित—
सार सत्य तुम्ही अनश्वर
सकल श्री शोभा प्रहप
प्रकप की मित—

तरणि तन्मय भाव गोचर,
तुम्ही म ल्य
प्रणत अतर
मौन अनुभव रत निरतर
दगता अब—

तुम्ही हो सवस्य मरी
तव मथित बुद्धि
करती व्यथ दरी—

शिथिल तन मन प्राण
जीवन साध- पर्वाश्रित
तुम्हें करता समर्पित।

स्पर्श पा चतन्य का
अस्थिर रस-गुम्फित
सजन रत, मुक्त अतर।—

सत्य रह श्री-सम्प
शोभा क निस्तर
हृदय का आनद में कर
सिध-मज्जित।

पीछे

रिक्त केंचुल सा जगत्
लगता असार विरस
तुम्हारे प्रेम से वंचित!

लौटता उर
मा, तुम्हारी ओर,
जन मे प्रीति मंगल का
अतंद्रित स्वप्न
तुमको कर समर्पित!

तुम्हें करता हृदय
अंत स्थित
समर्पित!

मात्र प्रतिकृति ये अविकसित—
सार सत्य तुम्ही अनश्वर
सकल श्री शोभा प्रदर्प
प्रकप की मित—

तरणि तन्मय भाव गोचर,
तुम्ही म ल्य
प्रणत अतर
मौन अनुभव रत निरंतर
दगता अब—

तुम्ही हो सवस्व मेरी
तत मथित बुद्धि
करती न्यय दरी—

निखिल तन मन प्राण
जीवन माप— एकत्रित
तुम्हें करता समर्पित!

स्पर्श पा तन्मय का
अस्थिर रस-गुञ्जित
मजन रत मुक्त अतर!—

म र र श्री-सम्म
गाथा क शिखर
हृदय का आनन्द में भर
शिशु-मज्जित!

पी कने

कविवर पन्त की अन्य काव्य कृतियाँ

ायतन	२५०
ोस्मिता	३०
ग व	२५
ा	४०
ुलि	५०
और बूढा चाद	६५
गी	४०
ानी	११०
	४०
ारा	१००
ाणा	८०
ाम राम	३५
	६०